जैन भारती

वर्ष 51 • अंक 4 • अप्रैल, 2003

With best compliments from :

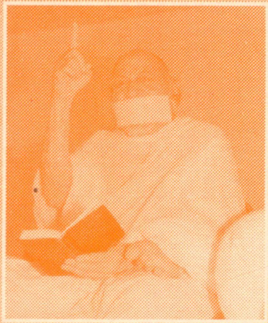

ILAS GROUP OF COMPANIES

Regd. Office :

203-204, Time House, 5-Community Center
Wazirpur Community Complex, Delhi 110052
Phone : 27376028, 23538128 • Fax : 27376029, 2755-7066
E-mail : ilas@vsnl.com

Head Office :

26, Sarat Bose Road, 1st Floor, Suit No. 12A, Kolkata 700020
Phone : 24762387, 24543521, 22342237 • Fax : 033-24543714, 22152450

ACTIVITIES

Cargo landing & Delivery Supervisors ❖ Analysers ❖ Samplers ❖ Surveyors
Claim Settling & Recovery Agents ❖ Tracers ❖ Investigators & Consultants

Mfg.

COOLER PUMP, ALL PURPOSE FANS, HEATER
HEAT CONVECTOR, GEYSERS ETC.

Office :

WRO : 518, Loha Bhawan
91, P.D. Mello Road
Mumbai 400009
Phone : 23444424, 23422838, 23453722
Fax : 022-23438428

Nepal : 6/385, Tebahal
New Road Gate, P.B. No. 532
Kathmandu (Nepal)
Phone : 225688, 231090
Fax : 00-9771-221634

Branches :

Haldia • Vizag • Chennai • Kandla • Mangalore • Jamnagar • Guwahati • Tejpur
Bhatinda • Berpeta Road • Dimapur • Pune • Surat • Bikaner & USA

शुभू पटवा
मानद संपादक
●
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 51 ● अप्रैल, 2003 ● अंक 4

प्रसंग

5
शुभू पटवा
निवृत्ति और प्रवृत्ति

विमर्श

9
प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद
अनेकांत : जटिलताओं को विविधता में समझने का बोध

14
नंद चतुर्वेदी
संसार के बीचोबीच

अनुभूति

19
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
मेरे जीवन के रहस्य

21
संवाद
साधकों के हाथों में नहीं, धर्माधिकारियों के हाथों में आ गया धर्म

30
मुनि लोकप्रकाश 'लोकेश'
इस विषमता का क्या उपाय हो

32
साध्वी नगीना
महावीर : इंसान में ईश्वरत्व

34
कहानी
अशोक सेकसरिया
राइजिंग टु दि ॲकेश्जन

41
कविता
कीर्ति चौधरी की कविताएं

शीलन

45
समणी सत्यप्रज्ञा
शब्द : सृजन भी संहार भी

47
यशपाल जैन
अपरिग्रह : जीवन का मधुर रस

49
बालकथा
गोपालदास
एक महल एक झोंपड़ी

53
भवानी सोलंकी
बड़ी ज्योति है मर्यादा

●
आवरण
खेराज

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर ● फोन : 2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये ● त्रैवार्षिक 500/- रुपये ● दसवर्षीय 1500/- रुपये

मनुष्य स्वभावतः परंपरा-पूजक होता है और जो जाति जितनी ही प्राचीन होती है, उसके भीतर अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता की भावना उतनी ही अधिक बद्धमूल होती है। अतः भारत जैसे प्राचीन देश में हमें नवीन संस्कृति के निर्माण की दृष्टि से अतीत के साधक एवं समर्थक तत्त्वों का उपयोग करना ही चाहिए।

अतीत की अनेक विचार-पद्धतियां, जो आज हमें प्रतिगामी प्रतीत होती हैं, अपने समय के समाज के लिए बड़ी कल्याणप्रद रही हैं। भौतिकवाद तथा यथार्थवाद को मानकर चलने वाली विचारधाराएं ही जन-कल्याण के मार्ग का अनुसरण करती रही हैं और इसके विपरीत आध्यात्मिक अथवा 'विज्ञानवादी' विचारधाराएं सदैव अप्रगतिशील रही हैं, ऐसा सोचना उचित न होगा। विज्ञानवाद भी विशेष काल में प्रगतिशीलता का द्योतक था। उदाहरण के लिए हम बौद्धकाल की अप्रतिष्ठित निर्वाण की कल्पना को लें।

निर्वाण की इस कल्पना के अनुसार साधक निर्वाण में प्रवेश की क्षमता रखते हुए भी सामाजिक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने को वंचित रखता है; जबकि असंख्य जीव दुख से आहत हों और क्लेश-पाश में फंसे हुए हों, ऐसी अवस्था में केवल अपने वैयक्तिक मोक्ष की ओर ध्यान देना उसे क्षुद्र प्रतीत होता है। निष्काम कर्म की भावना भी इसी काल में जन्म लेती है। कर्म बंधन का हेतु है। बिना कर्म का परित्याग किए मनुष्य आवागमन के चक्र से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता। किंतु बिना कर्म में प्रवृत्त हुए साधक जनसमूह का उद्धार भी नहीं कर सकता। जन-कल्याण की दृष्टि से कर्म में प्रवृत्त होने की आवश्यकता तथा कर्म के स्वाभाविक परिणामगत बंधनों से निर्लिप्त रहने के उद्देश्य में सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से निष्काम कर्म के सिद्धांत की उत्पत्ति हुई।

—आचार्य नरेन्द्रदेव

धर्म का आधार विरक्ति है और उसकी परिणति है त्याग। त्याग उतना ही होता है जितनी विरक्ति होती है। विरक्ति-शून्य त्याग, त्याग ही नहीं होता है और यह भी नहीं होता कि विरक्ति हो और त्याग न हो। सब जीवों का मनोभाव समान नहीं होता। किसी की पदार्थों में अनुरक्ति होती है और किसी की विरक्ति। अनुरक्त के विचार विरक्त को अद्भुत-से लगते हैं और विरक्त के विचार अनुरक्त को। यह अद्भुतता सापेक्ष है। अपनी-अपनी स्थिति में कोई अद्भुत नहीं है।

पांव के रोगी को खुजलाना अच्छा लगता है, पर जिसे पांव नहीं है, उसे वह अच्छा नहीं लगता। जिसमें मोह है, उसे भोग प्रिय लगता है। जो मोह के जाल से दूर है, उसे लगता है, भोग मोक्ष की बाधा है। अनुभूति भिन्न होती है और उसका हेतु भी भिन्न होता है।

'भिक्षु विचार दर्शन' से

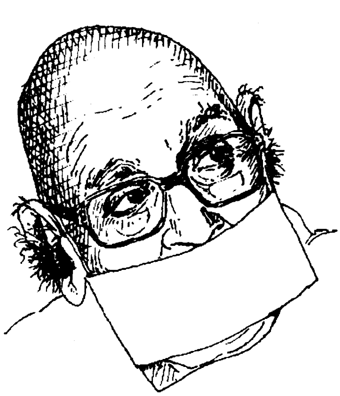

परिवार, समाज और राष्ट्र के दायित्वों का बोध और उनके निर्वाह की प्रेरणा आवश्यक है। उसी प्रकार धर्मसंघ के प्रति भी व्यक्ति का कुछ दायित्व होता है। समाज और राष्ट्र से उसे जीवनयापन के लिए सुविधाएं उपलब्ध हो सकती हैं, पर जीने की कला सिखाने वाला धर्म ही है। हर व्यक्ति की अपनी धार्मिक आस्था होती है। धार्मिक व्यक्ति किसी-न-किसी धर्म-संगठन से जुड़े हुए होते हैं। उसके विकास का दायित्व उन सब लोगों पर है, जो उसके प्रति आस्था रखते हैं।

प्रथम तीन प्रकार के दायित्व लौकिक हैं। चौथे प्रकार का दायित्व लोकोत्तर है। लौकिक दायित्व के साथ आत्महित का अनुबंध नहीं है। धार्मिक दायित्व आत्महित से जुड़ा है। जब तक इस दायित्व का बोध नहीं होता, व्यक्ति का दृष्टिकोण आध्यात्मिक नहीं बनता। आध्यात्मिक दृष्टि वाले व्यक्ति परिवार, समाज और राष्ट्र की उपेक्षा करें, यह आवश्यक नहीं है। अध्यात्म कभी नहीं कहता कि व्यक्ति अव्यावहारिक हो जाए। उसकी प्रेरणा का मुख्य बिंदु एक ही है कि व्यक्ति धर्म को कभी विस्मृत न करे। जीवन के सर्वांगीण विकास की दृष्टि धार्मिक दायित्व का बोध होने पर ही खुलती है।

—आचार्यश्री तुलसी

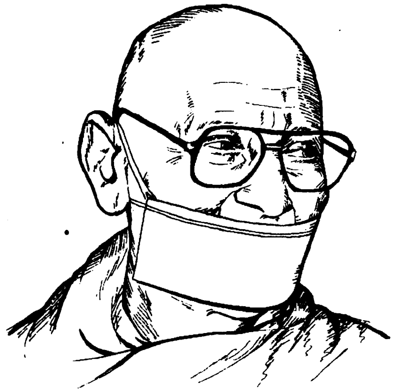

वे अभय थे। लोकैषणा उन्हें कभी विचलित नहीं कर सकी। सत्य की साधना में उनका जीवन बीता। उन्हें कटु-सत्य भी सुधा-घूंट की तरह पीना पड़ा, किंतु वे असत्य के लिए सत्य की बलि देने को तैयार नहीं हुए। भगवान् महावीर ने गोशालक पर मोहानुकंपा की। इसे वे धर्म कैसे मान सकते थे? यह बड़ी समस्या थी, क्योंकि भगवद्दशा में वीतराग सब दोषों से परे होते हैं। साधना-काल में उनमें भी राग-द्वेष की परिणति होती है। किंतु साधारण लोग अतिभक्तिवश ऐसा नहीं सुन सकते। यद्यपि आचार्य भिक्षु भगवान महावीर के प्रति अत्यंत श्रद्धालु थे, किंतु वे तत्त्व-विश्लेषण करने के लिए चले थे, इसलिए उन्हें कटु-सत्य की कड़वी घूंट पीनी पड़ी। उन्होंने लिखा—

छै लेश्या हुंती जद वीर में, हुंता आठूं ही कर्म।
छद्मस्थ चूक्या तिण समै, काई मूरख थापे धर्म।।

इस पद्य को उनके शिष्य भारमलजी स्वामी ने देखा। उन्होंने आचार्य भिक्षु से कहा—गुरुदेव! यह पद्य बहुत कटु है।

आचार्य भिक्षु बोले—'असत्य तो नहीं है?'

'है तो सत्य।'

'सत्य है तो रहने दो।'

लोगों में जो विरोध होना था, वह तो हुआ ही। इसको लेकर आचार्य भिक्षु को भी बहुत-कुछ सहना पड़ा।

अहिंसा के भाष्यकार

लोगों ने आचार्य भिक्षु को इस रूप में पहचाना—'दया के विरोधी', 'दान के विरोधी' और 'भगवान महावीर को चूका बताने वाले'।

यह उनकी सही पहचान है। उनकी पहचान के लिए हमें बहुत गहराई में उतरना होगा, उनका दृष्टिकोण समझना होगा। वे अहिंसा के बहुत बड़े भाष्यकार हुए हैं। उन्होंने जो दृष्टि दी है, उसे हम धर्म-संकट के प्रश्न खड़े कर टाल नहीं सकते। हम उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा तत्त्व-दर्शन का मनन करें, तभी हम उनके प्रति कृतज्ञ बन सकेंगे।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

भिक्षु अभिनिष्क्रमण (चैत्र शुक्ला नवमी संवत् 1817) का स्मरण करते हुए

प्रसंग

निवृत्ति और प्रवृत्ति

मनुष्य के जीवन में ये दोनों ही बातें—प्रवृत्ति और निवृत्ति—जन्म से ही देखी जा सकती हैं। ये दोनों ही वृत्तियां यदि पूर्ण रूप में न हों तो यह कहा जा सकता है कि ऐसे मनुष्य का जीवन अधूरा है। देहधारी के रूप में किसी को भले ही मनुष्य कहा जा सके, पर 'मनुष्यता' की पहचान के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसे प्रवृत्ति और निवृत्ति में आवृत होना ही होगा। वैसे तो किसी भी देहधारी को निवृत्ति या प्रवृत्ति से मुक्त नहीं देखा जा सकता, पर मनुष्य के रूप में जब इन बातों को देखा जाता है तो यह भी देखा जाता है कि ये वृत्तियां जड़ रूप में नहीं, अपितु पूर्ण सचेत रूप में उसमें विद्यमान हैं।

जन्म से ही मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति से आबद्ध होता है। कहा जा सकता है कि यह मनुष्य का सहज गुण है, उसकी प्रकृति है। जब हम यह मान लेते हैं कि यह मनुष्य की सहज प्रकृति है तो हमें यह भी मान ही लेना होगा कि सबकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है, जैसा कि हम देखते भी हैं। एक भी मनुष्य प्रकृति से, अपने नाक-नक्स, चेहरे-मोहरे, स्वभाव से एक-सा नहीं होता—उसमें भिन्नता होगी ही। रंग-रूप भी पूरी तरह एक नहीं हो सकता। प्रकृति की ऐसी विभिन्नता ऐसे रूप में हम अन्यत्र नहीं देख पाएंगे। जैसे कि रंग ही लें—सामान्यतः गौर या कृष्ण वर्ण—ये दो ही मान्य हैं, पर क्या मनुष्य-मनुष्य के बीच वर्ण इतने-भर ही हैं? दस मनुष्य एक ही परिवार के हों तो भी उनके वर्ण में यत्किंचित अंतर अवश्य होगा। उस महीन अंतर को हर नजर भले न पकड़ पाए, पर कुछ अंतर अवश्य रहेगा। जाहिर है—प्रकृति का यह अंतर प्रवृत्ति और निवृत्ति में भी विद्यमान है। 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना'—उक्ति इसीलिए प्रचलित है। यह एक सपाट या कि स्थूल विश्लेषण हुआ। हमें इस पर थोड़ी गहराई से विचार करना चाहिए।

प्रवृत्ति और निवृत्ति की धारा का धर्म और अध्यात्म में व्यापक वर्णन विद्यमान है। भारतीय परंपरा में दो धाराएं खूब प्रचलित हैं। निवृत्ति की धारा को तो भव-भव के बंधनों से मुक्ति का मार्ग ही माना गया है। घर-गृहस्थी छोड़कर संन्यास लेने को हम निवृत्ति की ओर अग्रसर होना ही मानते हैं। निवृत्ति मार्ग को समझने के लिए भगवान महावीर का जीवन हम देख सकते हैं। भगवान महावीर ने अपनी वय के तीस वर्ष पूर्ण कर घर-गृहस्थी का परित्याग किया और निवृत्ति के मार्ग पर चल पड़े। यह कहा जाता है कि तीस वर्ष की भरी जवानी में निवृत्ति की ओर चलते हुए भी वे आनंद से सराबोर रहे। बारह वर्ष की घोर-दुर्द्धर्ष तपस्या में भी उनको आनंद की अनुभूति होती रही। महाविनाशक विषधर ने फुफकारते हुए

जब अपने विष-बाण फेंके, महावीर को डस लिया—तब भी महावीर के मुंह से पीड़ा की चीत्कार नहीं फूटी, आनंद की अनुभूति ही हुई। (या कहा जा सकता है कि कोई हरकत ही नहीं हुई)। तात्पर्य यह कि निवृत्ति का मार्ग महावीर के लिए दुस्साध्य नहीं—आनंद का था।

महावीर की इस निवृत्तिमूलक वृत्ति के बरक्स हम कृष्ण और राम को लें और देखें कि वे किस धारा के वाहक रहे। प्रचलित तौर पर तो यही माना जाता है कि ये दोनों चरित्र प्रवृत्ति की धारा के वाहक रहे। पर क्या यह नहीं लगता कि ये दोनों ही चरित्र प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों ही वृत्तियों से आबद्ध रहे? राम का वन-गमन क्या निवृत्ति की श्रेणी में नहीं टिकता? और क्या वे अपने पिता की आज्ञा और चौदह वर्ष के वनवास में रोते-बिलखते रहे? नहीं। उस वनवास-काल में भी राम निवृत्ति के आचार की अनुपालना करते हुए प्रवृत्ति से विमुख नहीं हुए। आसुरी वृत्तियों का शमन अपने वनवास-काल में ही तो राम ने किया था।

इस दृष्टि से हमें महावीर के गृहस्थ-त्याग के जीवन को थोड़ी भिन्न दृष्टि से भी देखना चाहिए। महावीर ने अपने संन्यास-काल में कठोर साधना कर जब कैवल्य प्राप्त कर लिया, तो उसके बाद में क्या किया? तत्समय की सामाजिक विद्रूपताओं-विसंगतियों पर महावीर ने जिस तरह चोट की, स्त्री जाति के उत्थान के लिए जो निनाद किया और अंधविश्वासों, कूट कर्मकांडों पर जो सघन आघात किया—यह सब राम ही की तरह आसुरी वृत्तियों के शमन का ही काम था—महावीर का। उनका गृहस्थ-वास और संन्यास-वास इस प्रकार से सद्-प्रवृत्ति और सद्-निवृत्तिमूलक ही रहा।

अब कृष्ण के जीवन को भी हम देखें। कृष्ण की लीलाओं के प्रसंग एक बार एक ओर रखें और सुदामा के दिए तीन मुट्ठी चावल खाकर अपना संपूर्ण ऐश्वर्य त्याग देने की बात को लें। क्या यह कृष्ण का निवृत्ति की ओर अग्रसर हो जाना और उसी में चिर-आनंद की अनुभूति होना नहीं माना जाएगा? और फिर कौरव-पांडव युद्ध में पांडवों की ओर हो जाना क्या 'सत्य-मार्ग' को प्रतिष्ठा देना नहीं था? प्रकारांतर से क्या आसुरी वृत्तियों के लिए संघर्ष ही नहीं था—वह? ऐसा ही था।

भारतीय परंपरा के ये ऐतिहासिक चरित्र वर्तमान समय के इस दौर में हमें एक स्पष्ट संदेश दे रहे हैं कि प्रवृत्ति और निवृत्ति की धारा पर चलते हुए कैसे हम अपने समय के सामाजिक सरोकारों को प्रभावित करें और उन पर खरे उतरें। इस दृष्टि से हमें अपने ऐतिहासिक चरित्र-पुरुषों को पुनर्व्याख्यायित करके देखना चाहिए। हमें देखना चाहिए कि उनके चरित्र हमें इस संसार को किस दृष्टि से देखने की प्रेरणा देते हैं। हमें देखना चाहिए कि अपने समय की विषमताओं से टकराते हुए भी ये चरित्र कितने अनासक्त रहे और किस तरह अपने संकल्पों में खरे उतरे।

धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में आज एक स्वर बड़ी तीव्रता से सुनने में आता है कि मनुष्य को अपने कल्याण के लिए सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर निवृत्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होना चहिए। इन स्वरों से कोई हर्ज तो होता नजर नहीं आता, पर यह पहलू अवश्य विचारणीय होना चाहिए कि एक बेहतर समाज के निर्माण के लिए किस तरह की परिस्थितियां निर्मित की जाएं? निवृत्ति का अर्थ यदि विमुखता और दायित्वों से पलायन हो तो इसे सामाजिक दृष्टि से श्रेयस्कर कैसे माना जा सकता है? क्योंकि एक अच्छा और बेहतर समाज वही कहलाता है जिसके लोग अच्छे और बेहतर हों। यदि अच्छे और बेहतर लोग निवृत्ति (कथित) की ओर ही अग्रसर होते चले जाएं तो कमतर लोगों से बेहतर समाज की आशा नहीं की जा सकती। यद्यपि यह कतई नहीं माना जा सकता कि धर्म और अध्यात्म के प्रभाव से बहुत बड़ा वर्ग निवृत्ति की ओर आमुख होने ही वाला हो। तब धर्म और अध्यात्म के प्रणेताओं के जरिए यदि ऐसी परिस्थितियां निर्मित हो सकें कि प्रवृत्ति और निवृत्ति का तालमेल घर-गृहस्थी में रहते हुए कुछ इस तरह बने कि समाज में व्याप्त विषाद और विग्रह कम-से-कम होते जाएं और कोई आदर्श स्थिति ऐसी भी बन सके कि समाज पूरी तरह इनसे मुक्त हो जाए।

दरअसल अच्छे मनुष्य ही अच्छा समाज बनाते हैं। निश्चय ही अच्छे मनुष्यों की समाज में कमी नहीं, पर उनकी प्रवृत्तियां सोई पड़ी हैं, अथवा स्वकेंद्रित हैं। निवृत्ति की बनिस्बत समाज सापेक्ष सद्-प्रवृत्तिमूलक सक्रियता आज की आवश्यकता है। मनुष्य-मनुष्य में यह सक्रियता परिलक्षित हो—ऐसी प्रवृत्ति के बिना निवृत्ति निरर्थक है, आनंद-विहीन है। आज ऐसी ही प्रस्थापनाओं की समाज को जरूरत है। संसार निरा असार है, यह नहीं, संसार का सार प्रवृत्ति और निवृत्ति के अनासक्त स्वरूप में है, यही अध्यात्म है। क्या धर्म और अध्यात्म की पीठ से ये स्वर प्रखरता से मुखरित होने चाहिए? हां, होने ही चाहिए। आज के समय की यह मांग है।

—शुभू पटवा

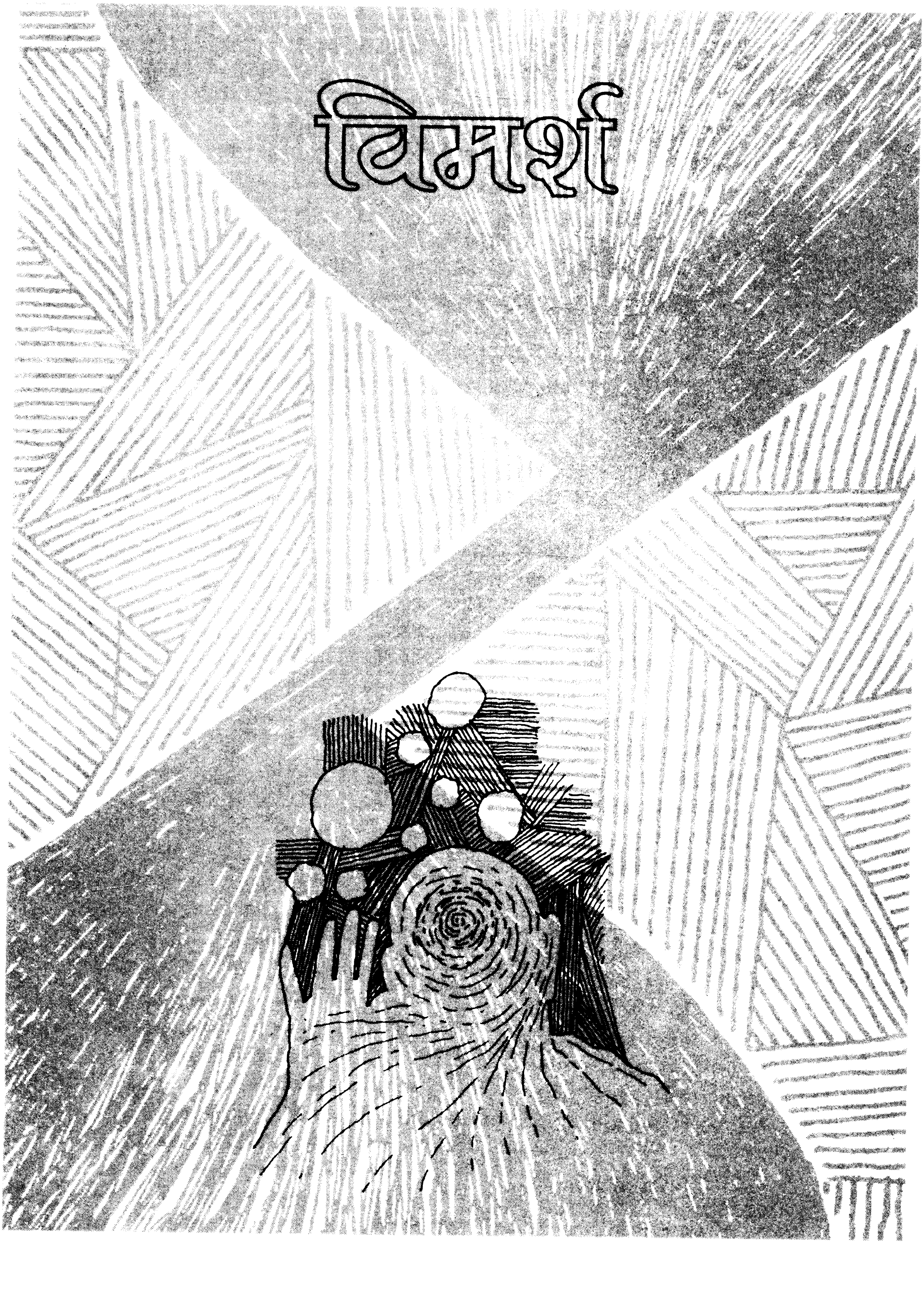
विमर्श

भक्ति और प्रेम के द्वारा मनुष्य निःस्वार्थ हो जाता है। आदमी के मन में जब भी किसी व्यक्ति या आदर्श के प्रति प्रेम और भक्ति उपजती है, तब ठीक उसी अनुपात में स्वार्थपरता का ह्रास होता है। प्रेमाभ्यास से मनुष्य क्रमशः सभी संकीर्णताओं के ऊपर उठकर विश्व में लीन हो सकता है। इसी से प्रेम, भक्ति या श्रद्धा—इनमें से किसी को भी चित्त में लाना आवश्यक है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा हो जाता है। अपने को 'दुर्बल, पापी' जो सोचते हैं, वे क्रमशः दुर्बल, पापी हो जाते हैं; जो अपने को शक्तिशाली और पवित्र मानते हैं, वे शक्तिशाली और पवित्र हो उठते हैं। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'।

—**सुभाषचन्द्र बोस**

काल-प्रवाह अर्थात् गति के बिना परिवर्तन संभव नहीं है। इसके बिना जीवन और जगत का बोध विकसित नहीं हो सकता। अतः अनेकांत को काल की व्याख्या के रूप में देखने से इसके भौतिकविज्ञान-सम्मत पक्ष का असीम क्षेत्र तो उपलब्ध होता ही है, साथ ही, यह व्यक्ति के साथ समाज के विकास की जटिलताओं को भी उसकी विविधता में समझने का बोध दे सकता है।

अनेकांत : जटिलताओं को विविधता में समझने का बोध

प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद

अनेकांत अनिश्चय या अनिर्णय की नहीं, बल्कि बोध की इस स्वीकृति की अभिव्यक्ति है कि सत्य को जिस रूप में मैं देख-परख रहा हूं उसके अतिरिक्त रूपों में भी उसे देखा-परखा जा सकता है। यह अंधों के उस बोध के जैसा नहीं है जिसमें हर अंधा हाथी के अपने-अपने स्पर्शानुभव के अंग को ही हाथी मान बैठता है। अनेकांत पूर्ण का वह बोध है जो हाथी के सभी अंगों को उसकी संपूर्णता में देखने के अनुभव से प्राप्त होता है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से जहां अपूर्णता के बावजूद एकांगिता में दुराग्रह और असहिष्णुता होती है वहां अनेकांत में संपूर्णता के साथ सदाग्रह और सहिष्णुता। लेकिन अनेकांत जीवन-दृष्टि को दर्शन के रूप में जब वाद मानकर विवाद का वितंडा खड़ा कर दिया जाता है तो संपूर्णता दृष्टि से ओझल होने लगती है और एकांगिता का रूप ले अपनी प्रभा खो बैठने के कारण जीवन-पथ में प्रकाश बिखेरने में अक्षम हो जाती है।

इस संबंध में बादरायण ने ब्रह्मसूत्र (2.2.33) में कहा है—'नैकस्मिन्नसंभवात्', अर्थात् एक सत्य पदार्थ में परस्पर विरूद्ध अनेक धर्म नहीं रह सकते क्योंकि यह असंभव है। ब्रह्मसूत्र पर यदि संपूर्णता में विचार किया जाए तो स्वयं बादरायण की ब्रह्म की स्थापना ऐसी ही है। तब दूसरी कठिनाई यह आ जाती है कि अनेकांत बादरायण के ब्रह्म को स्वीकार नहीं करता। भागवत पुराण में आदि जिन ऋषभदेव को विष्णु के अवतार के रूप में परिगणित किया गया है, परंतु जैन परंपरा एक स्वतंत्र परंपरा है, इसे नकारा नहीं जा सकता।

—श्रमण महावीर—
2602वीं जयंती पर विशेष

अतः आज इस पर भिन्न दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है। स्याद्वाद के सप्तांगभंगी से भिन्न दृष्टि से विचार करने का मार्ग आइंस्टाइन के $E=mc^2$ से प्रशस्त हो गया है जो यह प्रमाणित करता है कि पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तनीय है जिसके आधार पर अणु का विस्फोट कर उसे आणविक बम का रूप दिया जा सकता है। इस परिवर्तनीयता में मूल की एकता में ही अनेकता निहित है और उस अनेकता में अनुस्यूत है एकता। इस प्रक्रिया में विज्ञान और दर्शन दोनों हैं। इसके भौतिक विज्ञान पक्ष का तो पिछले लगभग सौ वर्षों में खूब विकास-विस्तार हुआ है, लेकिन दूसरा दार्शनिक पक्ष अभी तक लगभग उपेक्षित है। इस प्रसंग में अनेकांत पर नए सिरे से विचार अपेक्षित है।

'समण सुत्तम्' (सं. श्री जिनेन्द्र वर्णी) के आवरण पृष्ठ पर उद्धृत है—'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'। गीता (3.11) के 'परस्परं भावयन्तः' की मूल ध्वनि भी यही है। परंतु मताग्रह या संप्रदाय-आग्रह के कारण हमेशा ऐसा दिखता नहीं। हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि काल-प्रवाह हमारी व्याख्याओं के भरोसे नहीं प्रवाहित होता। न कहीं संभव है कि काल-पुरुष की सारी संभावनाओं की संपूर्ण व्याख्या या बोध कोई प्राप्त कर ले। यदि ऐसा संभव होता तो 24 अवतारों या 24 तीर्थंकरों की या अनेक बोधिसत्त्वों की आवश्यकता ही क्या थी? आइंस्टाइन के सूत्र ने हमें सत्य के आयाम में काल और उसकी गति के आमने-सामने जिस रूप में लाकर खड़ा कर दिया है, वैसा मानव-

समाज के इतिहास में कभी हुआ ही नहीं है। यह सूत्र ध्यान, अनुमान या चिंतन नहीं, बल्कि प्रयोग के आधार पर प्रमाणित है। प्रयोग भी ऐसा क्रूर कि जिसकी चाहकर भी कोई अनदेखी नहीं कर सकता। इसके आलोक में अनेकांत या स्याद्वाद को नए सिरे से समझने की जरूरत है। इतना ही नहीं, इससे अद्वैतवाद को भी समझने का एक नया आयाम प्राप्त होता है।

इस सूत्र का मूलाधार है गति की वह गणना, जिसकी सीमा छूने पर पदार्थ का ऊर्जा में रूपांतरण हो जाता है, अणु की सुप्त शक्ति जागृत हो महाविस्फोट का रूप ले लेती है। काल में निहित गति की यह अवधारणा सप्तांगभंगी की व्याख्या के मूल कारण तक ले जाती है। गति ही वह तत्त्व है जिसके कारण सप्तांगभंगी के विकास को पूर्णता प्राप्त होती है।

गति की लय या एकसूत्रता का विस्मरण कर देने से 'सर्वं क्षणिकम्' की बोधि होती है। बौद्ध दर्शन का क्षणिकवाद मनुष्य को नश्वरतावाद और निराशावाद तक ले जाता है जिसके कारण इसमें एकांगिता आ जाती है। अनेकांत इस एकांत का प्रतिपक्ष है, वैसे ही जैसे वर्धमान महावीर और गौतम बुद्ध वैशाली और पाटलिग्राम में थे और इन दोनों अवतारी पुरुषों के मध्य गंगा की अजस्र पावन धारा सतत प्रवाहित होती चली जा रही थी। महावीर ने सातत्य को देखा, गौतम ने प्रवाह को। गंगा-जल में एक डुबकी लगाने के बाद दूसरी डुबकी उसी जल में नहीं लगाई जाती, पर दूसरी डुबकी भी गंगा-जल में ही लगाई जाती है, इसे कैसे अस्वीकार किया जा सकता है? अन्य नदियों में भी जल ही है, इसे भी नहीं नकारा जा सकता। अतः क्षणिक के अतिरिक्त अन्य आयामों को देखने की दृष्टि भी सत्य-बोध के लिए आवश्यक है, यह जीवन की गहराई में उतरने वाले हर साधक को अनिवार्य प्रतीत होती है।

गति से जड़ की ऊर्जा के रूप में रूपांतरण से जीवन-दृष्टि के बोध की जिस नई संभावना का द्वार खुलता है, उसमें अनेकांत या बहुलता का जो बीज निहित है उसकी अनंत संभावनाओं को पचा पाने में पाश्चात्य परंपरा कठिनाई का अनुभव कर रही है, क्योंकि यह उनके एकाधिकारवादी दर्शन और सामाजिक व्यवस्था के विपरीत पड़ता है। इसी के कारण पश्चिम में सच्चा इतिहास-बोध विकसित हो ही नहीं पाया। अपना स्तुतिगान और दूसरे के निंदा-पुराण को ही वे इतिहास मानने का भ्रम पालते आ रहे हैं जिसे वे सारी दुनिया से तलवार के जोर पर मनवाने के लिए कटिबद्ध प्रतीत होते हैं।

काल-प्रवाह अर्थात् गति के बिना परिवर्तन संभव नहीं है। इसके बिना जीवन और जगत का बोध विकसित नहीं हो सकता। अतः अनेकांत को काल की व्याख्या के रूप में देखने से इसके भौतिकविज्ञान-सम्मत पक्ष का असीम क्षेत्र तो उपलब्ध होता ही है, साथ ही, यह व्यक्ति के साथ समाज के विकास की जटिलताओं को भी उसकी विविधता में समझने का बोध दे सकता है।

साधना-मार्ग पर सप्तभंगीसूत्र के साथ-साथ समन्वय सूत्र की अनिवार्यता का अनुभव इसलिए हुआ कि इसके बिना साधक का सिद्ध होना तो दूर, वह अनिश्चय, अनिर्णय और भ्रम के भयानक वन में भटक जाएगा (समण सुत्तम् 714-721 तथा 722-736)। इसे इस रूप में अभिव्यक्त किया गया है—

णाणाजीवा णाणाकम्मं, नानाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्मा।।735।।

अर्थात् नाना प्रकार के लोग हैं। उनके नाना प्रकार के कर्म हैं और उनकी नाना प्रकार की क्षमताएं हैं। अतः न तो अपने लोगों से विवाद में उलझना चाहिए, न दूसरे लोगों से।

विवाद के बीच से मार्ग के अनुसंधान का यह अहिंसक मार्ग है। इस मार्ग में जीव (आत्मा) और पुद्गल (पदार्थ, द्रव्य) को सक्रिय माना गया है और धर्म, अधर्म, काल तथा आकाश को अजीव। इन्हें चेतन और अचेतन भी कह सकते हैं। सक्रियता का कारण है कर्म। जीव जब कर्म के कारण सक्रिय होता है तब उसका कारण काल को माना गया है (द्रव्य सूत्र, 624-27)। जैसे जल मछली की गति में सहायक होता है वैसे ही धर्म जीव एवं पुद्गल की गति में (वही, सूत्र 632)।

इस जीवन-दृष्टि में सातत्य की जो पूर्णता है वह परस्पर सापेक्षता की स्वीकृति के कारण। विशेष सापेक्षतावाद का सिद्धांत आकर्षण-विकर्षण के जगत से इसलिए परे है कि वह प्रकाश की गति की परिधि का जगत है। प्रकाश की गति के परे केवल मन और आत्मा की गति है। इस आलोक में जीवन-दृष्टि की अनंत संभावनाओं के पट खुलने का जो अवकाश प्राप्त होता है उसमें आकर्षण-विकर्षण अर्थात् मनुष्य के राग-द्वेष से परे की स्थिति है। परंतु सापेक्षतावाद पर बर्ट्राण्ड रसेल (The Scientific Outlook) या ए. एन. ह्वाइटहेड (Science in This Modern World) जैसे चोटी के जिन दार्शनिकों ने चिंतन किया है उनकी दृष्टि इस ओर गई ही नहीं है। यहां तक कि

रसेल ने अपने भारी-भरकम ग्रंथ (The History of Western Philosophy) में भी इस पर विचार नहीं किया। राधाकृष्णन् और सुरेन्द्रनाथ गुप्त जैसे भारतीय दार्शनिक ही नहीं बल्कि श्री अरविन्द जैसे महायोगी भी इस ओर से उदासीन रहे हैं।

भारतीय परंपरा में जीवन्मुक्त की धारणा से इसे स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। 'जीवन्मुक्त साधु अर्थात जिनको इस लोक में जीते-जी मुक्ति मिली हो, संसार के सुख-दुख में नहीं डूबते चाहे वे सामान्य और उत्तम कार्य करें या नहीं करें' (योग वाशिष्ठ, 13.113, बृहत श्लोक संग्रह, सं. कल्याणमल लोढ़ा, अवधेशप्रसाद सिंह, पृ. 50)। इस जीवन-दृष्टि में गति की वह अवधारणा निहित प्रतीत होती है जिसे विशेष सापेक्षतावाद के सिद्धांत में गणितीय सूत्र से सिद्ध कर प्रयोग से प्रमाणित किया गया है। वैदिक युग में इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया था—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वरूपारूप बाह्यतः।।

अर्थात् वह चलता भी है, नहीं भी चलता है, वह दूर से भी दूर है और समीप से भी समीप है; वह समस्त जगत के भीतर और समस्त जगत के बाहर भी व्याप्त है (यजुर्वेद, 40.5; ईशावास्य, 5)। चरम गति की यह अवधारणा कोई पहेली नहीं है। किसी तारामंडल या खगोलशाला में जाकर किसी ऐसी घड़ी की सुई को देखिए जो एक सेकंड में दस हजार बार घूमती है। आपको कहीं कंपन तक का भास नहीं होगा। एक हजार बार घूमने वाली घड़ी में काफी ध्यान से देखने पर कंपन का भासमात्र होता है। अतः रवींद्रनाथ ठाकुर कहते हैं—'संचार करो सकल कर्मे शांत तोमार छन्द।' लेकिन ऐसा तब होता है जब मनुष्य का मन इस सत्य को पा लेता है—

मुक्ति? ओरे, मुक्ति कोथाय पावि, मुक्ति कोथाय आछे!
आपनि प्रभु सृष्टि बांधन प'रे बांधा सवार काछे।

अरे, मुक्ति कहां पाएगा? मुक्ति है कहां? प्रभु स्वयं सृष्टि के बंधन में सबके निकट बंधे हुए हैं (गीतांजलि)।

रवींद्रनाथ ठाकुर की वैष्णव भावना के मूल में गीता के मूल की वैदिक परंपरा का वह कर्मयोग है जिसे इस रूप में अभिव्यक्ति मिलती रही है। श्रुति का मंत्र है—

ॐ ईशावास्यमिंद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।
कुर्व्वनेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नात्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

यजुर्वेद (40.1-2) के इन मंत्रों में कर्म करते हुए शतायु होने की कामना की गई है तथा यह भी बताया गया है कि अनासक्त भाव से कर्म करते रहने से कर्म का लेप नहीं होता।

(II)

वैदिक परंपरा में अनासक्ति पर जितना बल दिया गया है, श्रमण परंपरा में उतना ही अपरिग्रह पर। कुछ बातों में वैसे गृहस्थों को भिक्षुओं से श्रेष्ठ बताया गया है, पर सब मिलाकर भिक्षु को ही गृहस्थ से श्रेष्ठ कहा गया है (समण सुत्तम्, 298)। श्रावक (गृहस्थ) वह है जो सम्यक् दर्शन से संपन्न है और प्रतिदिन भिक्षु से सम्यक् आचार के संबंध में प्रवचन सुनता है (वही, 301)। व्यक्ति समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपस्या से तपस्वी होता है (वही, 341)। भिक्षु के लिए निर्मम, निरहंकारी, निस्संग और गर्वमुक्त होने पर जोर दिया गया है तथा सब जीवों के प्रति समता भाव आवश्यक माना गया है (वही, 346)। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को महाव्रत के रूप में मान्यता प्रदान कर पूरी सामाजिक व्यवस्था को मानसिक संस्कार देने का जो अद्भुत प्रयास किया गया है वह संपूर्ण विश्व की सामाजिक व्यवस्था में अद्वितीय है। संपूर्ण भारतीय समाज इनसे प्रभावित-प्रेरित रहा है। हां, इधर कुछ दशकों से भारतीय समाज पर पाश्चात्य प्रभाव के प्रबल होते जाने के कारण इनके अनुपालन में न केवल शिथिलता बढ़ती जा रही है बल्कि नई पीढ़ी इनके प्रति विद्रोही तेवर तक दिखाने लगी है। ब्राह्मण परंपरा हो या श्रमण परंपरा, पाश्चात्य प्रभाव में आकर भारतीय समाज परिग्रही अर्थात् धन-पूजक होता जा रहा है।

इन नई परिस्थितियों की नई चुनौतियों का समाधान पाने के लिए सप्तभंगीसूत्र, अनेकांत, स्याद्वाद आदि पर नए सिरे से विचार कर नए समन्वय सूत्र के उपस्थापन और प्रसंगानुकूल उनकी नई व्याख्या की आवश्यकता है जिसमें नई पीढ़ी को सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति हो सके। इसके बिना सम्यक् आचार का मार्ग अवरुद्ध नहीं तो विकृत होता जाएगा।

नई पीढ़ी की शिकायत यह रही है कि पुरानी पीढ़ी ने न तो स्वयं आचरण का उच्च मानदंड प्रस्तुत किया और न नई परिस्थितियों के अनुरूप जैन धर्म के सिद्धांतों की नई व्याख्या ही प्रस्तुत की। नई पीढ़ी की प्रश्नाकुल मुद्रा का सामना आज सभी धर्मों को किसी-न-किसी रूप में करना पड़ रहा है। आधुनिक ईसाई धर्म ने इससे बचने का रास्ता

निकाला है धर्म-निरपेक्षता या मत-निरपेक्षता या संप्रदाय-निरपेक्षता का, जिसमें धर्म और ईश्वर के स्थान पर धन ही सर्वस्व हो गया है। धन-लोलुपता के कारण नैतिकता को तिलांजलि दे दी गई है। इस वातावरण में अपरिग्रह का पालन यदि असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन अवश्य हो गया है।

अतः आज आवश्यकता आ पड़ी है कि विशेष सापेक्षता सिद्धांत और इसके अन्य अनुषंगी विचारों की पृष्ठभूमि में सप्तभंगी सूत्र, अपरिग्रह एवं अन्य संबंधित विषयों पर न केवल सांगोपांग अध्ययन-मनन किया जाए बल्कि विचार-गोष्ठियों में खुलकर विचार-विमर्श हो। उदाहरण के लिए औद्योगिक क्रांति के पूर्व के कृषिप्रधान ग्रामीण समाज में अपरिग्रह का जो समाज-दर्शन ग्राह्य एवं प्रचलित था, क्या वह आज मान्य हो सकता है? जब ऋतु के अनुसार आदमी अपने परिधान में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन कर लेता है, तब क्या शील-सदाचार की मर्यादाएं और मान्यताएं यथावत् बनी रहेंगी? समय-समय पर अनेक नवयुवकों ने प्रश्न उठाया है कि यदि पूरा समाज अपरिग्रही हो जाए तो श्रमण-संघ का भरण-पोषण कैसे होगा? तब क्या श्रमण परंपरा ही स्वयं विलुप्त नहीं हो जाएगी? अतः श्रमण परंपरा के अस्तित्व की रक्षा के लिए श्रावक परंपरा का सुदृढ़ होना अनिवार्य है।

जीवन की गाड़ी मात्र एक पटरी पर नहीं चल सकती है। अतः श्रमण और श्रावक दोनों की सुदृढ़ता अनिवार्य है। इसका तनिक और विस्तार करें तो श्रमण-श्रावक के अतिरिक्त ब्राह्मण, बौद्ध, सिख, इस्लाम, ईसाई, चीनी आदि संपूर्ण मानव-समाज की सभी परंपराओं का सह-अस्तित्व आवश्यक और अनिवार्य है। यहां आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की यह उक्ति प्रासंगिक प्रतीत होती है—'काल भी एक शक्ति है जो कर्म से प्रभावित नहीं होती। एक काल आता है, एक समय आता है, एक क्षण आता है कि उस क्षण में, काललब्धि के कारण आत्मा सहज रूप में जाग जाती है। उसमें अपने अस्तित्व के प्रति जागरूकता का भाव आ जाता है। उस क्षण में मिथ्यात्व का साम्राज्य, मोह का साम्राज्य पहली बार हिल उठता है और धीरे-धीरे उसकी जड़ें टूटने लगती हैं' (जैन भारती, जनवरी, 2003, पृ. 12)। मुझे ऐसा लगता है कि काललब्धि का यह चिर-प्रतीक्षित क्षण आ गया है। अतः मिथ्यात्व और मोह के साम्राज्य की जड़ पर प्रहार करने में अब प्रमाद करना घातक होगा।

इन बातों को ध्यान में रखकर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अनेकांत की व्याख्या इस रूप में की है—'यदि शांतिपूर्ण सहवास चाहते हो तो अपने क्रोध को इतना प्रबल मत रखो कि दूसरे का क्रोध उभर जाए। साथ रहने के लिए सहन करना जरूरी है' (पाथेय, आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, 2002, पृ. 9)। श्रावक परिवार की दो या तीन पीढ़ियों के सह-अस्तित्व के लिए भी क्रोध पर संयम रखना शांतिपूर्ण सहवास के लिए आवश्यक है। पर यह पर्याप्त नहीं है। मनुष्य समाज में अन्य परिवारों के साथ सह-अस्तित्व की भावना का विकास करे, उदारता की परिधि का विस्तार करे, यह भी अपने और अन्य की शांति के लिए आवश्यक है।

आधुनिक समाज में अपरिग्रह को भी इसी रूप में समझने की आवश्यकता है। मनुष्य परिग्रह में प्रवृत्त होता है सुखपूर्वक जिंदगी जीने के लिए। सुख सापेक्ष है। किसी के लिए एक झोंपड़ी पर्याप्त होती है, किसी को चार कमरों का बंगला भी अपर्याप्त प्रतीत होता है, किसी को अपना राजमहल दूसरे के राजमहल से छोटा प्रतीत होता है। अतः परिग्रह का आकार-प्रकार फैलता जाता है। ऐसी सापेक्ष आवश्यकता के साथ जब सामाजिक प्रतिष्ठा की भावना भी जुड़ जाती है तब इसमें और कई प्रकार की जटिलताओं के समावेश के कारण अपरिग्रह के पालन की भावना तो लगभग लुप्त ही हो जाती है। जो समाज मुख्य रूप से व्यवसाय से जुड़ा हुआ है उसे अपने व्यावसायिक हितों की रक्षा के लिए जिस प्रकार से प्रतिस्पर्धा में उतरना पड़ता है उसके कारण भी आज अपरिग्रह की मर्यादाओं का जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे, उल्लंघन बढ़ता जा रहा है।

बौद्ध परंपरा की मध्यममार्गीय जीवन-दृष्टि के सम्यक्-अष्टांग में सम्यक् आजीव को स्वीकार कर इसका समाधान खोजा गया। उसका प्रयोजन था कि 'जीविका के लिए ऐसा कोई आचारण न किया जाए जिससे किसी को दुख हो और जिसके लिए कोई अकुशल कर्म करना पड़े।' इस मध्यममार्ग का अनुसरण भी सबके लिए सहज या सरल नहीं होता। अपरिग्रह की कसौटी तो इससे भी कठिन है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के इस कथन में प्रकाश की किरण दिखती है—'कर्म का एकछत्र साम्राज्य नहीं है, इसीलिए कर्म के व्यूह को तोड़ा जा सकता है। मोह का भी एकछत्र साम्राज्य नहीं है, इसीलिए मोह के चक्रव्यूह को भी तोड़ा जा सकता है' (जैन भारती, वही, पृ. 13)।

अनेकांत जीवन-दृष्टि आधुनिक जीवन की चुनौती-भरी नए विश्व-बाजार की नई परिस्थितियों में अपरिग्रह का परित्याग कर नहीं, बल्कि इनकी नई व्याख्या कर ही मानव

को समृद्ध करने वाले जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन का व्यापक रूप ले सकती है। इसमें आधुनिक भौतिक विज्ञान की भूमिका मारक नहीं बल्कि तारक की होगी। पर यह तभी संभव है जब पंच अणुव्रतों के समाज में पालन की व्यापक स्वीकृति की भावना सहज रूप से विकसित हो। इसके लिए संचार-प्रचार के आधुनिक वैज्ञानिक माध्यमों के और अधिक प्रयोग की आवश्यकता है। मनुष्य की दुर्बलताओं को प्रज्वलित करने वाले विज्ञापनों से संचार-प्रचार के माध्यम जिस प्रकार भरे पड़े रहते हैं उनसे मनुष्य की पशुता को खुल्लमखुल्ला पोषण प्राप्त हो रहा है। लेकिन संयम बरतने की सीख देने वाले विज्ञापनों का तो इन दिनों अकाल ही पड़ गया है। ऐसे वातावरण में अपरिग्रह को एक समाज-दर्शन के रूप में विकसित करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है।

आज सारे संसार पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। इनके मूल में है परिग्रह की प्रबलता। मनुष्य भोग के साधनों का इतना संग्रह कर लेना चाहता है कि उसकी ज्वाला में आज वह स्वयं दग्ध हो रहा है। लेकिन भोग के इस नक्कारखाने में अपरिग्रह की तूती की आवाज कौन सुनेगा?

आधुनिकता और विकास के नाम पर जब भोग को ही जीवन का सर्वस्व मान लिया जाता है तब व्यष्टि और समष्टि को रोगी होने से कैसे बचाया जा सकता है? इसके लिए एक ओर भोग पर संयम और दूसरी ओर दान की वृत्ति को और अधिक प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। भारत में, सारे संसार में, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आज सेवा-कार्य की और उसके लिए धन की इतनी आवश्यकता है कि उनके लिए अपरिग्रह के नए समाज-दर्शन को विकसित करना संभव हो सकता है। यदि लोभ या मोह के कारण ऐसी संस्थाएं भ्रष्ट हो जाती हैं तो उन पर निगरानी के लिए नए वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है।

सत्य किसी एक व्यक्ति या समाज के केवल एक अंग के लिए नहीं होता। पर आचरणकर्ता की शक्ति उसके कार्य की परिधि को तय करती है। अतः जब कार्य के लिए गठित अनेक केंद्र परस्पर सहयोग के साथ कार्य करेंगे तो उनकी परिधि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तक विस्तृत हो सकती है।

प्रदूषण के कारण आज पर्यावरण-असंतुलन मानव-समाज ही नहीं बल्कि धरती के प्राणी जगत मात्र के लिए अस्तित्व का संकट बन गया है। पिछले तीन लाख वर्षों में पृथ्वी जितनी प्रदूषित नहीं हुई थी, उससे अधिक औद्योगिक क्रांति के इन तीन सौ वर्षों में हो गई है। भूगर्भ के जिन खनिज पदार्थों के निर्माण में प्रकृति को बीस से तीस लाख वर्ष तक लगते हैं उनका नाश मात्र दो-तीन सौ वर्षों में बेसमझे-बूझे किया जा रहा है। उद्भिज पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि तो मात्र दिनों-महीनों-वर्षों की बात है, परंतु खनिजों के निर्माण की कालावधि इन सबसे भिन्न है, क्योंकि प्रक्रिया भी नितांत भिन्न है। विज्ञान की प्रयोगशालाओं में इनका निर्माण प्रयोग-प्रदर्शन के लिए भले ही कर लिया जाए परंतु सामूहिक उपयोग के बृहद् पैमाने पर यह संभव नहीं है। इन खनिजों के अविचारित अंधाधुंध प्रज्वलन से वायुमंडल के आणविक सूक्ष्म तत्त्वों में जो असंतुलन बढ़ता जा रहा है वह एक ओर ऋतु परिवर्तन के नियम को प्रभावित कर रहा है और दूसरी ओर इसके कारण मानव-चित्त के विकलन और विक्षेप में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

भारतीय संस्कृति को आरण्यक संस्कृति कहा जाता रहा है। आधुनिक नागर संस्कृति ने उस आरण्यक संस्कृति को नष्ट कर दिया है। नागर संस्कृति का नाश शोर के प्रदूषण से होता है, जैसा कि हड़प्पा-मोहेंजोदड़ो की सिंधु घाटी की संस्कृति का हुआ। शोर मानव-मन को असंतुलित कर देता है, विक्षिप्तता का कारण तक हो जाता है। इसीलिए आधुनिक समाज में अनिद्रा और पागलपन का रोग बढ़ता जा रहा है।

यह नई चुनौती अपरिग्रह पर नए सिरे से विचार करने के लिए हमें प्रेरित करती है। इसके लिए समन्वय सूत्र का पुनर्लेखन अनिवार्य प्रतीत होता है (समण सुत्तम्, 732)। समत्व-चक्षु में तब जिन वस्तुओं का समावेश किया जाता है, आज उनमें और कई वस्तुओं के समावेश की आवश्यकता आ पड़ी है, तभी अनेकांत में अपरिग्रह का समन्वय हो सकेगा। केवल अपनी दृष्टि को ही सत्य मानकर उनकी प्रशंसा करते जाना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इससे केवल पांडित्य का अहंकार बढ़ता है और आवागमन के चंगुल से छुटकारा नहीं मिलता (वही, 734)।

इन सबके मूल में है विचार-प्रदूषण। वर्तमान युग में मानव-समाज की अनेक समस्याओं ने विचार-प्रदूषण के कारण ही आज विकराल रूप धारण कर लिया है। पर्यावरण-प्रदूषण उसी का परिणाम प्रतीत होता है। परंतु आधुनिक युग भौतिकता का अत्यधिक आग्रही हो गया है जिसका कारण है विचार-प्रदूषण, जिसने आज पर्यावरण-प्रदूषण के रूप में विकराल रूप ले लिया है और उससे संबद्ध पक्षों की आज नितांत उपेक्षा की जा रही है। अनेकांत जीवन-दृष्टि इस असंतुलन को दूर करने में विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूपों में सहायक हो सकती है जिसे अपरिग्रह के नए समाज-दर्शन के रूप में विकसित किया जा सकता है। ❖

संत अपनी जीवन-शैलियों से सामाजिक आभिजात्य और धार्मिक कर्म-कांड के पूरे तंत्र को छिन्न-भिन्न करते हुए उन्हें हास्यास्पद और अनावश्यक बना देते हैं। उनकी यह ताकत दुनिया के वैभव और मानवीय गरिमा को दूसरी तरह व्याख्यायित करती है। मन की सारी ग्रंथियां खुलकर बिखर जाती हैं और धर्माचरण के सारे रास्ते जीवन में घुलते-मिलते नजर आते हैं। बड़ी बात तो यही है कि वे संपूर्ण जीवन जीते हैं, जिसमें कोई फांक, कोई विभाजन या कि कोई विसंगति नजर नहीं आती। संसार के बीचोबीच रहकर, वे संसार से बचते हैं; उसके आर-पार जाते हैं। उनका जीवन ही ज्ञान की अनंतता को समझने देता है। जाति, संपत्ति, प्रभुता, वर्चस्व, पांडित्य, पराक्रम सबके विरुद्ध उनका जीवन खड़ा रहता है, लेकिन हमेशा अकंपित आस्था के साथ। स्त्री, पुत्र, जीविका, रोग, मृत्यु, मान-अपमान, हर्ष-विषाद और दूसरे सारे आक्रमणों को सहते हुए वे यथार्थ के गूढ़ार्थों को समझते-समझाते हैं।

संसार के बीचोबीच

नंद चतुर्वेदी

संत-साहित्य के बारे में थोड़े धैर्य के साथ: थोड़े रुक कर बात करेंगे। पहले संतों के विषय में अपनी धारणाओं को देखें। हमारे मन में संतों और उनकी छवि का जो आकलन है वह उन्हें पवित्रता की उस उच्च, उस असामान्य कोटि में स्थापित करता है कि जैसे हम इस दुनिया में रहते उनके साथ नहीं चल सकते। उनके वचनों को हम दीवारों पर बहुत आदर के साथ लेकिन कुछ ऊंचाई और दूरी पर टांगे रखते हैं जिससे हम उनके स्पर्श, उनके ताप से बच निकलें। इस तरह, हम एक विभाजित और संवादहीन दुनिया बनाते हैं। संतों की और गृहस्थों की अलग-अलग दुनिया, लेकिन इस चतुराई के साथ कि वे हमारी दुनिया में शामिल तो रहें, बस—हस्तक्षेप न करें। हमें आशीर्वाद देते रहें।

संतों के साथ हमारे व्यवहार की कई उलझनें हैं; कई तरह की ग्रंथियां हैं। सबसे प्रबल सफलता की ग्रंथि है; स्वार्थ की और सुख की। हम मानते हैं कि संतों के पास हमारे मनोरथों, हमारी मनोकामनाएं पूरी करने की अद्भुत शक्ति है; उनके हाथ में हमारा भविष्य है। इस समझ के दुष्परिणामों में एक यह है कि हम उनके पूरे जीवन के संघर्ष, उनके स्वभाव, उनके आदर्श और आचरण की तरफ आकर्षित नहीं होते, उस सिद्धिदायिनी अलौकिकता की तरफ देखते हैं जो हमें उनके पास नजर आती है। लेकिन हम यह नहीं जानते कि संत हमारे निकटतम पड़ौसी हैं। वे हमारी तरह जीवन की सारी कठिनाइयों में उलझे हुए गृहस्थ और अत्यंत सामान्य धंधों से जीविकोपार्जन करते, अपने दरवाजों से लोभ-लालच को धकेलते हुए, अभिमान और आडंबर-रहित दुनिया बनाने के आकांक्षी सज्जन हैं; वे न पंडित हैं, न कवि, वे न शास्त्र जानते हैं, न विज्ञान, न धर्म, न नीति। उनमें से एक संत अपने आराध्य से पूछता है, 'पहले तो मैं स्नान भी नहीं करता था, अब रोज करता हूं। अपनी तरफ से (अपने खर्च से) तिलक, छापा लगाता हूं और तुम्हारा भक्त कहलाता हूं। किसी ऊंचे कुल का नहीं हूं, न कोई सुशोभन नाम है। पूछता हूं—'तारोगे या नहीं?'

संत अपनी जीवन-शैलियों से सामाजिक आभिजात्य और धार्मिक कर्म-कांड के पूरे तंत्र को छिन्न-भिन्न करते हुए उन्हें हास्यास्पद और अनावश्यक बना देते हैं। उनकी यह ताकत दुनिया के वैभव और मानवीय गरिमा को दूसरी तरह व्याख्यायित करती है। मन की सारी ग्रंथियां खुलकर बिखर जाती हैं और धर्माचरण के सारे रास्ते जीवन में

घुलते-मिलते नजर आते हैं। बड़ी बात तो यही है कि वे संपूर्ण जीवन जीते हैं, जिसमें कोई फांक, कोई विभाजन या कि कोई विसंगति नजर नहीं आती। संसार के बीचोबीच रहकर, वे संसार से बचते हैं: उसके आर-पार जाते हैं। उनका जीवन ही ज्ञान की अनंतता को समझने देता है। जाति, संपत्ति, प्रभुता, वर्चस्व, पांडित्य, पराक्रम सबके विरुद्ध उनका जीवन खड़ा रहता है, लेकिन हमेशा अकंपित आस्था के साथ। स्त्री, पुत्र, जीविका, रोग, मृत्यु, मान-अपमान, हर्ष-विषाद और दूसरे सारे आक्रमणों को सहते हुए वे यथार्थ के गूढ़ार्थों को समझते-समझाते हैं।

संतों के संदर्भ में यह तथ्य रेखांकित करना चाहिए कि वे धार्मिक कट्टरतावाद और वर्ण-व्यवस्था के अहंकार को अपने सरल-स्वभाव और बंधुत्व की गरिमा से जीत लेते हैं। वे किसी के प्रतिपक्ष नहीं हैं, उनके पास सामाजिक समता का कोई तर्क-शास्त्र भी नहीं है, किसी भी प्रकार का विमर्श-कौशल भी नहीं: तब भी वे जीवन के उत्कर्ष का साहित्य लिखते हैं। उनकी कोई आकांक्षा नहीं है, उनके पास कोई आंदोलन नहीं है; चारों तरफ ईर्ष्या, निंदा, अपने कुल, गोत्र, जात, धन, ऐश्वर्य पर ऐंठता गांव-समाज है: तब भी वे अविचलित, कपटरहित मन वाले हैं।

हम उनके जीवन की अब प्रासंगिकता पूछते हैं। क्या उनका जीवन अब किसी काम का नहीं रह गया है? क्या अब वे भोले भाव, जिनसे रघुराई मिलते हैं—(भोले भाव मिलें रघुराई) अनावश्यक और व्यर्थ हो गए हैं? क्या संत-स्वभाव वाले समाज की हमें प्रासंगिकता, आवश्यकता ही पूछनी चाहिए? प्रकारांतर से क्या वे या वैसा जीवन, वैसे भाव, वैसा आचरण देने वाला, चाहने वाला समाज अप्रासंगिक हो गया है?

अब हम इस निर्णय पर पहुंच गए हैं कि साधु-जीवन, संत-समाज, वैष्णव-मन, आदर्शों में प्रकाशित होने वाला जीवन, *निष्कलुष आचरण अप्रासंगिक हैं; क्योंकि वे* उत्तेजनारहित हैं। किसी समय हमने 'ज्योति' की तलाश की थी, उसी में से संतों और साधु-जीवन के साथ रहने, चलने का निश्चय किया था। अब हम उस जीवन से थक गए हैं और 'उत्तेजनाओं' की गति के साथ रहना चाहते हैं। किसी समय हमने यह तय किया था कि किंचित वैराग्य और अनासक्ति के साथ धन संग्रह करेंगे और इस संकल्प के साथ कि वह जब बढ़ने लगेगा तो दोनों हाथों से उलीच देंगे। एक दोहे में कबीर ने लिखा—

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यह सज्जन को काम।।

यह सज्जनों का संपत्तिशास्त्र था। इस बात को भारतीय समाजशास्त्र बार-बार और कई तरह से दुहराता है। ब्रह्मा के पास दुखी देवता, दानव और मनुष्य जाते हैं। तीनों से ब्रह्मा 'द' कहते हैं। देवताओं के संदर्भ में यह 'द' दमन के लिए है, दानवों के संदर्भ में दया और मनुष्यों के संदर्भ में दान के लिए। भारतीय विचारक संग्रह से डरते हैं, इसलिए जब कभी मौका मिलता है, सूत-भर भी जगह मिलती है तो देने की, छोड़ने की, वैराग्य की, दोनों हाथों से उलीचने की बात करते हैं। जिंदगी के चौथे हिस्से में संन्यास के लिए व्यवस्था देते हैं—छोड़ने की, पूरे मन से। धर्म अपरिग्रह का दबाव बनाए रखता है। पूरे भारतीय परिदृश्य में, विचार और आचरण में 'माया महाठगनी' के साथ जबरदस्त विरोध का यह सिलसिला शुरू रहा है।

अब हमारा 'संपत्तिशास्त्र' एकदम बदल गया है। अब मनुष्य की परिभाषा भी उस तरह परिवर्तित हो गई है। मनुष्य की स्थिति, मनुष्य की पहचान टुकड़ों-टुकड़ों में बंट गई है। कामयाब आदमी कई तरह महत्त्वपूर्ण हो सकता है, लेकिन संपदा के बिना नहीं। आधुनिक अर्थशास्त्र मनुष्य को परिभाषित करते हुए उसे 'अर्थ-पशु' (इकोनोमिक एनिमल) कहता है। इस तरह 'पशु' होना सारे 'नैतिक' उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाना है, दुनिया एक खूबसूरत चरागाह में बदल जाती है। यह मनुष्य और प्रकृति और दुनिया के बीच 'सर्वनाश' का रिश्ता है। मनुष्य के लिए ही सब हैं—प्रकृति की विपुल संपदा और दुनिया के रिश्ते—यह भाव एक नृशंस मनोविज्ञान का हिस्सा हो गया है जो उन्मुक्त बाजारवाद में बदल गया है। सब रिश्ते उत्पाद की वस्तुएं हो गए हैं, जो खरीदे जा सकते हैं।

इन्हीं स्थितियों में *संत-स्वभाव और साधु-चरित्र संदेहास्पद और अप्रासंगिक लगने लगे हैं। लेकिन हुआ यह* भी है कि वैश्विक संपत्तिशास्त्र ने एक नई संत जमात का *निर्माण* किया है जो राजनेताओं और मध्यम वर्ग के स्त्री-पुरुषों की लौकिक कामनाएं सिद्ध करने के हुनर में दक्ष है। ये संत चमत्कारों और सिद्धियों, भविष्यवाणियों और भभूत का माया-लोक बनाने में प्रवीण होते हैं और आशीर्वादों, कृपा-दृष्टियों से मंत्रीपद बांटते हुए अपने लिए 'इंटर कांटिनेंटल होटलें' बनाते हैं। यह विडंबना ही है कि किसी समय जो संत अपने स्वभाव की गरिमा, सरलता, साधुत्व और समता के आदर्शों से जीवन और समाज को रच रहे थे, वे अब संपदा की ढेरियों पर बैठे हैं। थोड़े समय पहले एक बंदूक बनाने वाले कारखाने के मालिक संत सत्ता-पुरुषों के अत्यंत चहेतों में शामिल थे। दूसरे 'स्वामी' संपत्ति के

सम्मोहन में फंसकर बार-बार जेल गए और संतों के दिव्य-ललाट पर कालिख पोतते रहे। यह विडंबना ही है कि एक प्रतिविश्व-रचना का उत्साह पैदा करने वाला संत-समुदाय धीरे-धीरे विलुप्त हो रहा है और उसकी जगह मीडिया और मध्यम वर्ग द्वारा पोषित तथाकथित संत-समुदाय ध्यान और योग, संत-सिद्धांत और जीवन-जीने की कलाओं के 'पेकेज' बेचकर अंतरराष्ट्रीय व्यापार में लगा है।

एक बेहद संत-विरोधी समय में भी हमारे लिए विकल्प की दुनिया बनाने के रास्ते ढूंढ़ने का काम अपरिहार्य हो गया है। क्योंकि कभी भी और कोई भी संस्कृति लालच के बाजार में खुशहाली के सपने खरीदकर जीवित नहीं रह सकती और न वह एक बंटी हुई, सौंदर्य-विहीन, विकलांग, अनाकर्षक वस्तु या उत्पाद हो सकती है। दुनिया या संस्कृति का आकर्षण उसके पूरे जीवनावेग और भविष्य देखने-बांधने की शक्ति में है। जिन संतों ने भारतीय जीवन की सार्थक रचना की है, वे विरक्त जन नहीं हैं और न वे चतुर पंडित हैं, वे गृहस्थ हैं, जीवन के बीचोबीच खड़े, खेती-बाड़ी करने वाले, जाट और जुलाहा, दरजी और चमार, सामान्य लोग। उनके पास कोई अलौकिक शक्ति नहीं है, वे न वेद पढ़े हैं, न ज्योतिष, न कलमा, न कुरान; वे न प्रतिष्ठा के आकांक्षी हैं, न पद के; तब भी वे जीवन, समाज, समय और व्यवस्था की अकिंचनताओं से लड़ते हैं; दुख और अपमान के अग्निकुंड में से वे एक चमत्कार की तरह बचकर निकल आते हैं। इस अमर्ष-रहित जीवन-यात्रा में न उनके मन में क्रोध होता है, न प्रतिशोध की इच्छा, न संताप, न हीनता। वे केवल नैतिकता का प्रभाचक्र बनाते हैं जो उनके जीवन में से ही आलोकित होता है। इस तरह संत-जन गृहस्थों के जीवन को नई उमंग से भर देते हैं, यह अध्यात्म और वैराग्य का नया पाठ होता है। जीवन के भीतर से आया यह वैराग्य कोई कामना नहीं करता। कोई विज्ञापन, खबर, कीर्ति-ध्वज नहीं बनता।

साहित्य

संत-साहित्य की अद्वितीयता और उसकी प्रासंगिकता यही है कि वह जीवन, समय और समाज के बीचोबीच रहता निर्मित होता है। उसके रचनाकार शब्द और संसार के घनिष्ठ संबंधों को जानते हैं। इसलिए उनकी रचनाओं के लिए रसिकों की किसी अलग मंडली की आवश्यकता नहीं होती। संत कवियों को अपने कर्तृत्व से कुछ पाना नहीं है; न यश, न अर्थ, न काम, न मोक्ष। एक समता का भाव उन्हें सृष्टि-रचना के कुतूहल और सृष्टि-लीला से जुड़ा रखता है। लेकिन यह भी उतना ही वास्तविक है कि इस समता के परिदृश्य में वे सामाजिक विभाजन की अत्यंत अपमानपूर्ण त्रासदी को भी देखते हैं। नामदेव ने एक अभंग में विह्वल होकर लिखा है—'हे पांडुरंग! अगर छीपा बनाना था तो भक्त क्यों बनाया और भक्त बनाना था तो छीपा क्यों बनाया?' इस अभंग में यद्यपि कबीर की तरह फटकार और वक्रोक्ति का आवेश नहीं है, लेकिन 'सबको ईश्वर ने बनाया है', इस उक्ति को दुहराते हुए जाति-आभिजात्य को बरकरार रखने के पाखंड का विचलित कर देने वाला प्रत्याख्यान है। दरअसल संतों का साहित्य उन सब अर्थों में सामाजिक साहित्य है जो भाव और भाषा को उन सब सरहदों से मुक्त करता है, जिसे रचना या कला का आभिजात्य बांधता है। ऐसी साहित्य-रचना संत-जन किसी सिद्धांत के अंतर्गत नहीं करते, केवल उस सहज अनुभूति, उस व्यापक संवेदना के आधार पर करते हैं जो बराबरी का एक नैतिक जनाधिकार है और त्रिकाल का सत्य है—यही जो ईश्वर है, 'तो में, मो में खड्ग, खंभ में, सब जग रहा समाइ'। इस ईश्वर की साक्षी में, जिसका एकमात्र वैभव समत्व, बराबरी में है, संत स्वयं को उसमें विलीन कर देता है और गैर-बराबरी का प्रतिपक्ष होता है। संत-साहित्य की प्रासंगिकता यही है कि वह गैर-बराबरी का प्रतिपक्ष है; वह समता के यथार्थ को ईश्वर में स्थापित करता है। संत-साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति उस यथार्थ को समझने का विवेक देना भी है जिसे 'नश्वरता' कहते हैं। इस बोध के द्वारा ही संत दुर्बुद्धि के सारे घमंडों और भेदों में विभक्त दुनिया को अविभक्त, भेद-रहित बनाने का संघर्ष करते हैं।

हमने जान-बूझकर संतों और उनके साहित्य को अपनी जानी-पहचानी, अच्छी-बुरी, उलझी, भयाक्रांत, सच्ची-झूठी दुनिया से अलग कर दिया है जबकि वे हमारी दुनिया के ही लोग हैं, हमारे पड़ौस के, हमारी तरह; हमारी अच्छी दुनिया को बचाने, बनाने वाले, हमारे मददगार। ❖

शिक्षा कोई ऐसा काम नहीं है कि हम किसी घर पर सफेदी पोत देवें या किसी बर्तन पर कलई कर दें। शिक्षा तो अच्छे बीज बो कर, अच्छा खाद-पानी देकर, अच्छी हिफाजत रखकर किसी अच्छे वृक्ष को पनपाने तथा उस पर अच्छे फल लगाने के कार्य के समान एक साधना का विषय है।

—दयालचन्द सोनी

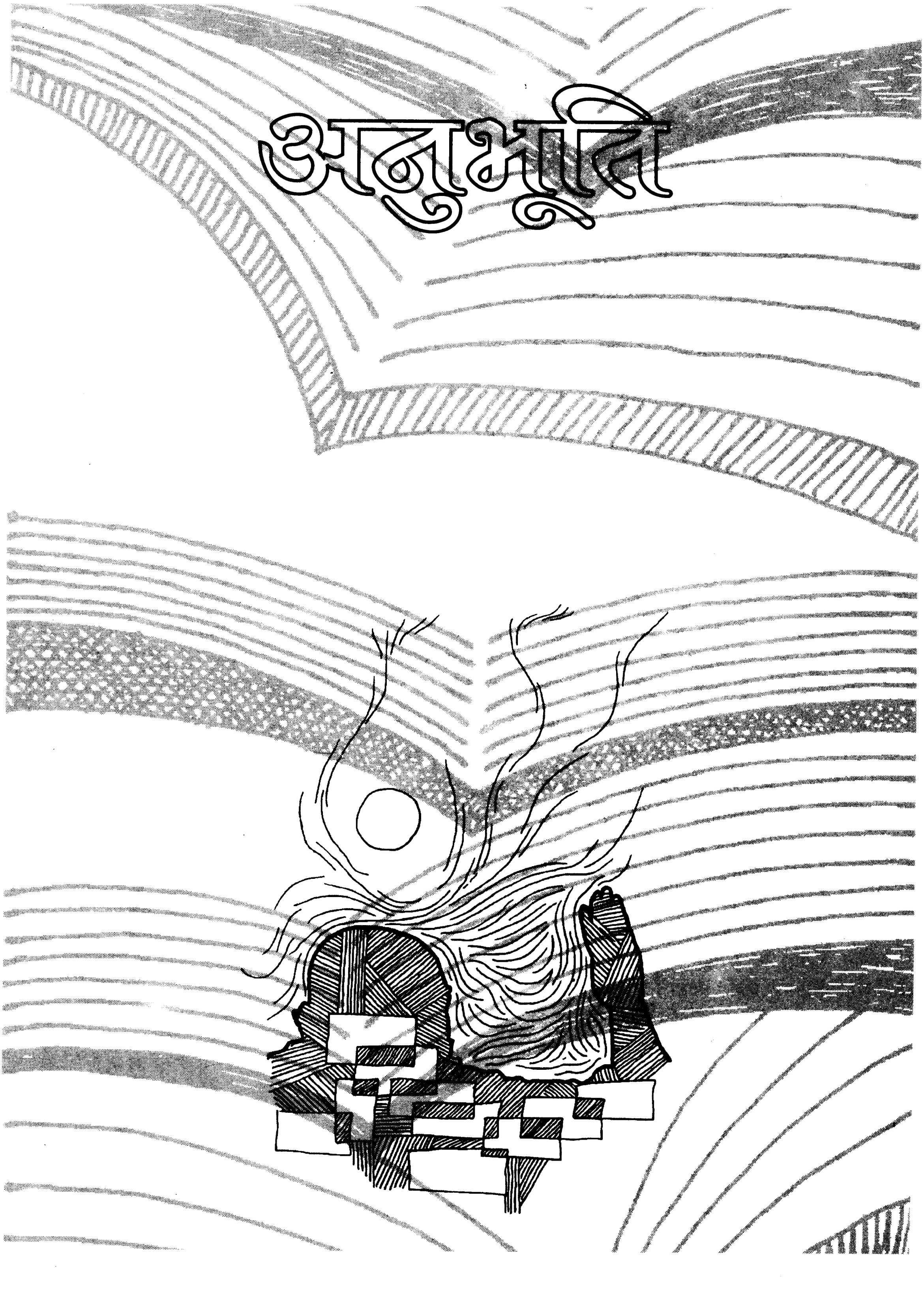
अनुभूति

सवेरे उठा तो धूप खिल कर छा गई थी
और एक चिड़िया अभी-अभी गा गई थी।
मैंने धूप से कहा : मुझे थोड़ी गरमाई दोगी उधार?
चिड़िया से कहा : थोड़ी मिठास उधार दोगी?
मैंने घास की पत्ती से पूछा : तनिक हरियाली दोगी—
तिनके की नोक-भर?
शंखपुष्पी से पूछा : उजास दोगी—
किरण की ओक-भर?
मैंने हवा से मांगा : थोड़ा खुलापन—बस एक प्रश्वास,
लहर से : एक रोम की सिहरन-भर उल्लास।
मैंने आकाश से मांगी
आंख की झपकी-भर असीमता—उधार।

सबसे उधार मांगा, सबने दिया।
यों मैं जिया और जीता हूं
क्योंकि यही सब तो है जीवन—

—अज्ञेय

मैंने श्रद्धा का जीवन जीया। श्रद्धा और तर्क—हमारे जीवन-रथ के दो पहिए हैं, दो चक्के हैं। मैं तर्क को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूं। तर्क के बिना सत्य को खोजने का आगे रास्ता ही नहीं मिलता। किंतु श्रद्धाहीन तर्क को भी मैं खतरनाक मानता हूं, मानता रहा हूं। मैंने एक सूत्र बनाया—व्यवहार के क्षेत्र में कभी तर्क का प्रयोग नहीं करना है। जहां सिद्धांत का क्षेत्र है, दर्शन का क्षेत्र है, वहां तो तर्क में किसी से पीछे रहना मुझे पसंद भी नहीं था। मेरा सौभाग्य है कि मैं पीछे नहीं रहा। जहां व्यवहार का क्षेत्र है, वहां तर्क का प्रवेश-द्वार बंद रहे, वहां तर्क नहीं हो सकता। वहां तो विनम्रता और श्रद्धा होनी चाहिए।

मेरे जीवन के रहस्य

आचार्यश्री महाप्रज्ञ

आज मैं उस सत्य को अनावृत करना चाहता हूं, उद्घाटित करना चाहता हूं—जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी जीवन-शैली का निर्माण करता है, वह स्वयं के लिए और दूसरों के लिए बहुत लाभदायक बन सकता है।

भाग्य मानूं या नियति? सबसे पहली बात—मुझे जैन शासन मिला। जिन-शासन का अर्थ मानता हूं—अनेकांत का दृष्टिकोण मिला। मैंने अनेकांत को जीया है। यदि अनेकांत का दृष्टिकोण नहीं होता तो शायद कहीं-न-कहीं दलदल में फंस जाता। मुझे प्रसंग याद है—दिगंबर समाज के प्रमुख विद्वान कैलाशचंद्र शास्त्री आए। उस समय पूज्य गुरुदेव (आचार्यश्री तुलसी) कानपुर में प्रवास कर रहे थे। मेरा ग्रंथ 'जैन दर्शन : मनन और मीमांसा' प्रकाशित हो चुका था। पंडित कैलाशचंद्र शास्त्री ने कहा—मुनि नथमलजी ने श्वेतांबर-दिगंबर परंपरा के बारे में जो लिखना था, वह लिख दिया, पर वह हमें अखरा नहीं, चुभा नहीं। जिस समन्वय की शैली से लिखा है, वह हमें बहुत अच्छा लगा।

अनेकांत की दृष्टि

मुझे अनेकांत का दृष्टिकोण मिला, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। जिस व्यक्ति को अनेकांत की दृष्टि मिल जाए, अनेकांत की आंख से दुनिया को देखना शुरू करे तो बहुत-सारी समस्याओं का समाधान अपने-आप हो जाता है।

अनुशासन का जीवन

दूसरी बात—मुझे तेरापंथ में दीक्षित होने का अवसर मिला। मैं मानता हूं कि वर्तमान काल में तेरापंथ में दीक्षित होना परम सौभाग्य है और यह इसलिए है कि आचार्य भिक्षु ने अनुशासन का जो सूत्र दिया, अनुशासन में रहने की जो कला और निष्ठा दी, वह देवदुर्लभ है, अन्यत्र देखने को मिलती नहीं है। मैंने अनुशासन में रहना सीखा। जो अनुशासन में रहता है, वह आगे बढ़ता चला जाता है, आत्मानुशासन की दिशा में गतिशील बन जाता है। तेरापंथ ने विनम्रता और आत्मानुशासन का जो विकास किया—वह साधु-संस्था के लिए ही नहीं, पूरे समाज के लिए जरूरी है।

विनम्रता और आत्मानुशासन

महानता के दो सूत्र होते हैं—स्वेच्छाकृत विनम्रता और आत्मानुशासन। जो व्यक्ति महान होना चाहता है, अथवा जो महान होने की योजना बनाता है—उसे इन दो बातों को जीना होगा। जो व्यक्ति इस दिशा में आगे बढ़ता है, विनम्र और आत्मानुशासी होता है—महानता अपने-आप उसका वरण करती है।

मुझे तेरापंथ धर्मसंघ में मुनि बनने का गौरव मिला और उसके साथ मैंने विनम्रता का जीवन जीना शुरू किया।

आत्मानुशासन का विकास करने का भी प्रयत्न किया। मुझे याद है—इस विनम्रता ने हर जगह मुझे आगे बढ़ाया। जो साधु बड़े थे, उनका सम्मान करना मैंने एक क्षण के लिए भी कभी विस्मृत नहीं किया। सबका सम्मान किया। आचार्यश्री तुलसी के निकट रहता था। विश्वास था कि ये गुरुदेव से जो बात करेंगे तो हमारा काम हो जाएगा। जो भी समस्या आती, मैं उसके समाधान का प्रयत्न करता। मैं छोटा था, बड़े-बड़े साधु मुझे कहते, पर मैंने हमेशा उनके प्रति विनम्रता और सम्मान का भाव बनाए रखा। कभी उनको यह एहसास नहीं होने दिया कि मुझमें कहीं कोई बड़ेपन का लक्षण है।

मैंने आत्मानुशासन का विकास किया। शासन न करना पड़े, अपना नियंत्रण स्वयं अपने हाथ में ले लें, इसका अर्थ है कि ऐसा व्यक्ति अपने भाग्य की चाबी ही अपने हाथ में ले लेता है।

गुरु का अनुग्रह

मैंने आचार्यश्री भिक्षु को पढ़ा। उनकी जो संयम-निष्ठा थी, त्याग और व्रत की निष्ठा थी, उसे पढ़ने से जीवन को समझने का बड़ा अवसर मिला। पूज्य गुरुदेव (आचार्यश्री तुलसी) का अनुग्रह था—जब भी कोई प्रसंग आया, मुझे कहा—तुम यह पढ़ो। शायद आचार्यश्री भिक्षु को पढ़ने का जितना मुझे अवसर दिया गया, मैं कह सकता हूं—तेरापंथ के किसी भी पुराने या नए साधु को पढ़ने का उतना अवसर नहीं मिला। उनकी क्षमाशीलता, उनकी विनम्रता, उनकी सत्यनिष्ठा को समझने और वैसा ही जीने का प्रयत्न भी मैंने किया।

मुझे आचार्यश्री तुलसी का तो सब-कुछ मिला था। उनके पास रहा। जीवन जीया। उन्होंने जो कुछ करना था, किया। इतना किया कि पंडित दलसुखभाई मालवणिया जितनी बार आते, कहते—उन्होंने लिखा भी 'आचार्यश्री तुलसी और युवाचार्य महाप्रज्ञ—गुरु और शिष्य का ऐसा संबंध पंद्रह सौ वर्षों में अन्यत्र कहीं रहा है—हमें खोजना पड़ेगा।' आचार्यश्री तुलसी से मुझे सब-कुछ मिला, जीवन मिला।

नवीनता के प्रति आकर्षण

मेरे अध्ययन का क्षेत्र बढ़ा। सिद्धसेन दिवाकर की एक उक्ति थी—उसने मुझे बहुत आकृष्ट किया। उनका जो वाक्य पढ़ा, सीखा या अपने हृदय-पटल पर लिखा, वह है—जो अतीत में हो चुका, वह सब-कुछ हो चुका—ऐसा नहीं है। सिद्धसेन ने बहुत कड़ी बात लिख दी—'मैं केवल अपने अतीत का गीत गाने के लिए नहीं जन्मा हूं।' पर, मैं शायद उस भाषा में न भी बोलूं, मुझे यह प्रेरणा जरूर मिली कि नया करने का अवकाश हमेशा विद्यमान रहता है। हम सीमा न बांधें कि सब-कुछ हो चुका। हुआ है। अनंत पर्याय हैं। आज भी नया करने का अवकाश है। कुछ नया करने की रुचि भी प्रगाढ़ होती गई। मुझे भी कुछ नया करना चाहिए। कोरे अतीत के गीत गाने से काम नहीं होगा, वर्तमान में भी कुछ करना है—मेरे मीत मत गाओ कोरे अतीत के गीत—केवल अतीत के गीत मत गाओ, कुछ वर्तमान को भी समझने का प्रयत्न करो।

आचार्य हरिभद्र, जिनभद्र गणि, क्षमाश्रमण, आचार्य हेमचंद्र, आचार्य मलयगिरि, आचार्य कुंदकुंद आदि-आदि ऐसे महान आचार्य हुए हैं—जिन्हें पढ़ने पर कोई-न-कोई नई बात ध्यान में आती गई। उन सबका संकलन और अपने जीवन में प्रयोग करता रहा।

निदर्शन निस्पृहता का

केवल जैन आचार्यों का नहीं, आचार्यश्री तुलसी ने ऐसे वातावरण का निर्माण किया था कि मेरा दृष्टिकोण व्यापक बन गया। किस परंपरा का है, संप्रदाय का है—यह प्रश्न ही गौण हो गया। मैंने वैदिक संन्यासियों को पढ़ा-देखा, उनसे मन पर जो प्रभाव हुआ उसकी लंबी चर्चा नहीं करूं—एक संन्यासी की बात करना चाहता हूं। स्वामी विद्यारण्य, जो पहले जादवपुर युनिवर्सिटी में गणित के प्रोफेसर थे, एशिया के ग्यारह व्यक्ति चुने गए, उनमें वे एक थे। उन्होंने हिन्दू गणित पर एक पुस्तक लिखी। किसी दूसरे के नाम से छपी है, पर लेखन उनका है। हमारे बहुत निकट संपर्क में रहे। उनकी जो निस्पृहता देखी, मुझे उसने बहुत प्रभावित किया। एक समय वे जोधपुर में आए हुए थे। हम शौच के लिए बाहर जा रहे थे। वे भी साथ में थे। मैंने पूछ लिया—'स्वामीजी! आपने प्रातराश कर लिया? दूध पीया?' उन्होंने कहा—'दूध कहां से आए?' मैंने कहा— 'आपके पीछे बड़े-बड़े प्रोफेसर घूमते रहते हैं कि आप कुछ बता दें, आपको क्या कमी है?' वे बोले—'मुनि नथमलजी! (आचार्यश्री महाप्रज्ञ) अभी जोधपुर में हूं तब तो सब पीछे-पीछे घूमते हैं। यहां से मैं पुष्कर चला जाऊंगा और वहां भिक्षुकों की पंक्ति में जाकर भोजन करूंगा। वहां दूध कहां से आएगा? वहां दूध नहीं मिलेगा तो दूध का अभ्यास मुझे सताएगा, दूध का संस्कार सताएगा कि आज दूध नहीं मिला।' उनकी अनेक बातें मैंने देखी कि एक संन्यासी कितना निस्पृह और कितना संसार से मुक्त रहना चाहता है। ऐसे सैकड़ों-सैकड़ों जैन-अजैन व्यक्ति संपर्क में आए—हिंदू भी, मुसलमान भी। बड़े-बड़े लोग मिले। उनको देखा, कुछ नई बातें सीखीं।

साधकों के हाथों में नहीं, धर्माधिकारियों के हाथों में आ गया धर्म

राष्ट्रपति श्री ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के 14 फरवरी, 2003 को मुंबई (कांदीवली) में दर्शन किए। राष्ट्रपतिजी ने रात्रि में लगभग नौ बजे तेरापंथ भवन में प्रवेश किया और सीधे आचार्यवर के कक्ष में ही गए। उन्होंने श्रद्धा एवं भक्ति-भरे हृदय से अध्यात्म के शिखर-पुरुष आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के चरणों का स्पर्श किया। देश के प्रथम नागरिक की इस विनम्रता और सहज शालीनता ने सबके दिल को छू लिया। राष्ट्रपति महोदय पट्टासीन आचार्यश्री के सामने विनम्र मुद्रा में बैठ गए और वार्तालाप का दौर प्रारंभ हुआ। वर्तमान की अनेक समस्याओं पर केंद्रित इस महत्त्वपूर्ण और उत्प्रेरक बातचीत को जैन भारती के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं **मुनि धनंजयकुमार—**

राष्ट्रपति श्री ए. पी. जे. अब्दुल कलाम— आज आपके दर्शन कर बहुत प्रसन्नता हुई है। आपका स्वास्थ्य कैसा है?

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी—अच्छा है।

राष्ट्रपतिजी—आपका श्रम और संयम निरंतर चल रहा है।

आचार्यश्री—हां, वह तो जरूरी है।

राष्ट्रपतिजी—आचार्यजी! आपकी पुस्तकें मैंने पढ़ीं—द मिरर ऑफ सेल्फ, माइंड बियोण्ड माइंड, इकोनोमिक्स ऑफ महावीरा, आई एण्ड माइन—इनमें आपका विषय-विश्लेषण बहुत ही वैज्ञानिक है।

आचार्यश्री—विज्ञान तो आपका विषय है।

राष्ट्रपतिजी—आपने इनमें सोलह मूल्यों की चर्चा की है। नैतिक, वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों के विकास पर भी बल दिया है।

आचार्यश्री—हां, एक नागरिक में उन मूल्यों का विकास होना अपेक्षित है।

राष्ट्रपतिजी—(विस्मय से) आचार्यजी! आप इतना कब लिखते हैं?

आचार्यश्री— (मुस्कराते हुए) मैं सोचता नहीं हूं। अचिंतन की भूमिका में रहता हूं। जो विचार प्रस्फुट होते हैं, वही लिखा देता हूं। मेरा विश्वास है—'यदि एकाग्रता हो तो आठ घंटे का काम तीन घंटे में किया जा सकता है।'

राष्ट्रपति और राष्ट्रसंत का आपसी संवाद

राष्ट्रपतिजी—मैं इससे पूर्ण सहमत हूं। (एक नया प्रश्न प्रस्तुत करते हुए) आचार्यश्री, आपके साहित्य में एकांत बनाम अनेकांत का विशद विवेचन है। जैसा मैंने समझा है—अनेक लोग एक साथ कार्य करते हैं, टीम वर्क करते हैं, यह अनेकांत। एकांत वैयक्तिक दृष्टि है। क्या मैं सही सोच रहा हूं?

आचार्यश्री—भिन्न विचार और भिन्न चिंतन हो सकता है, किंतु उनमें विरोध न होकर सह-अस्तित्व होना चाहिए। दो विरोधी चिंतन-धाराओं में भी सामंजस्य का सूत्र खोजा जा सकता है।

राष्ट्रपतिजी—लोग एकांतवादी बन रहे हैं। एकांत दृष्टिकोण को कैसे मिटाया जाए? अनेकांत की ओर कैसे मोड़ा जाए? महावीर का महत्त्वपूर्ण दर्शन है—अनेकांत। इसको कैसे आगे बढ़ाएं?

आचार्यश्री—सबसे बड़ी समस्या है भाव (इमोशन) की।

राष्ट्रपतिजी—क्या अनेकांत दृष्टिकोण में 'इमोशन' बाधा है?

आचार्यश्री—'हां, नकारात्मक भाव समस्या की जड़ है। उससे एकांत दृष्टि पैदा होती है और वही झगड़े का कारण है। अनेकांत दृष्टिकोण के विकास के लिए इस पर ध्यान देना अपेक्षित है कि व्यक्ति अपने इमोशन (भाव) पर नियंत्रण कैसे करे? इसका अभ्यास जरूरी है। हमारे मस्तिष्क का जो 'राइट हेमिस्फियर' है, उसको हम जागृत कर सकें तो ये झगड़े समाप्त हो सकते हैं।

राष्ट्रपतिजी—आप जो कह रहे हैं, वह सही है, लेकिन हम करें कैसे? क्या यह बौद्धिक विकास से हो सकता है?

आचार्यश्री—बुद्धि से 'लेफ्ट हेमिस्फियर' (बायां पटल) जागृत होता है। मस्तिष्क के 'राइट हेमिस्फियर'

प्रबल रहा भाग्य

ज्योतिष की बात कर रहे थे। मैं उस समय छोटा था। गुरुदेव (आचार्यश्री तुलसी) आचार्य बने। पहला ही वर्ष था वह। कालूगणी का विक्रम संवत् तिरानवे में स्वर्गवास हो चुका था। चौरानवे का चातुर्मास महाराजा गंगासिंहजी की प्रार्थना पर गुरुदेव को बीकानेर में करना था। बीकानेर जाते हुए कुछ दिन श्रीडूंगरगढ़ में रहे। एक दिन हम सहपाठी बैठे थे—मुनि बुद्धमलजी, मुनि जंवरीमलजी, मुनि नगराजजी (संघमुक्त) आदि। मुनि नगराजजी की ज्योतिष में बहुत रुचि थी। कुछ जानते भी थे। वे खोजते रहते थे। एक श्रावक था वहां—मन्नालाल नौलखा। बहुत अच्छा जानकार था। उस व्यक्ति में ज्योतिष की बहुत गहरी पकड़ थी। मुनि नगराजजी बोले—आज मन्नालालजी से बात करनी है, जन्मकुंडली बनानी है। अनेक संतों की जन्मकुंडली बनाई गई। हम सब बैठे थे। वे फलादेश कर रहे थे। उसने कहा—'आपकी कुंडली में भाग्य इतना प्रबल है कि आप जो चाहेंगे, वह काम हो जाएगा।'

मैंने इस बात को सुना। बचपन से ही ग्रहणशीलता का एक भाव था। मैंने जैसे गांठ ही बांध ली हो कि मुझे ऐसा कोई काम नहीं करना है कि जो अच्छा भाग्य है, उसमें कोई कमी आए। एक संकल्प कर लिया। हमेशा प्रयत्न किया कि भाग्य कहीं बिगड़े नहीं। जैन दर्शन के अनुसार संक्रमण भी होता है। बुरा भाग्य अच्छा और अच्छा भाग्य बुरा बन जाता है। मैंने दृढ़ता के साथ यह संकल्प किया—भाग्य में कमी न आए। वह प्रमाद के द्वारा आती है। मैंने तय कर लिया कि मुझे अधिक-से-अधिक अप्रमत्त रहने की साधना करनी है।

मैं मानता हूं कि ज्योतिष का वह एक संकेत मेरे लिए पथ प्रशस्त करने का हेतु बन गया।

योग का संस्कार

एक दूसरी बात यह थी कि जब मैं छोटा था, तब गांव में रहा। टमकोर छोटा-सा गांव है। पांच-सात हजार की आबादी वाला गांव। हम कई बच्चे खेल रहे थे। पढ़ाई करते नहीं थे। विद्यालय भी नहीं था। सारा दिन खेल-कूद करते रहना, रोटी खाना और सो जाना—बस, यही क्रम था। एक दिन हम खेल रहे थे। एक अज्ञात व्यक्ति आया। कई बच्चों को उसने एक साथ देखा। मेरे बारे में उसने कहा—'यह बड़ा योगी होगा।' योगी क्या होता है, यह तो मैं नहीं जानता था। एक अन्य बच्चे के बारे में कहा—'यह सात दिन बाद मर जाएगा।' उसने दो-तीन बातें और भी बतलाईं। किसी ने विश्वास नहीं किया। पर, जब सात दिन बाद हमारा वह साथी मर गया, जिसके लिए ऐसा कहा था, तब लोगों ने उसे खोजना शुरू किया कि वह कौन था? फिर कहां पता लगता? मेरे मन में संस्कार जम गया था कि 'यह योगी बनेगा।' योग का संस्कार भी हो गया।

इस प्रकार एक-एक संस्कार सामने आते गए और कुछ बातें जमती गईं। मैंने उनको अपने लिए, जैसे कहते हैं कि गांठ-सी बांध ली। संकल्प भी ले लिया कि मुझे ऐसा कुछ करना है।

जरूरी है महानता और सफलता

मैं सबसे यह कहना चाहता हूं—महानता और सफलता—ये दोनों हर व्यक्ति के लिए जरूरी हैं। हमारी दिशा—तुच्छता, अल्पता की ओर न हो। हमारी गति भी उधर न हो। हर व्यक्ति के मन में संकल्प जागे कि मुझे महानता की दिशा में प्रस्थान करना है, महान बनना है। आकांक्षा की बात नहीं, किंतु महान होना बहुत अच्छी बात, मैं इसे अच्छा संकल्प मानता हूं।

आशावादी दृष्टिकोण

दूसरी बात है—सफलता। सफलता के लिए मैंने जो अनुभव किया, जैसा जीवन जीया—दूसरों को भी उस दिशा में चिंतन करना है। सफलता के लिए जो बाधा है, विकास के मार्ग में जो बाधा है—वह बाधा है—निराशा। 'नहीं हो सकता'—सफलता का यह सबसे बड़ा विघ्न है। गुरुदेव (आचार्यश्री तुलसी) ने अनेक बार कहा था—मैंने इनको कुछ भी काम का कहा, इन्होंने आज तक नहीं कहा कि यह काम नहीं हो सकता। आगम संपादन का इतना कठिनतम काम था। गुरुदेव ने कहा—'करना है।' मैंने कहा—'हो जाएगा।' कभी यह नहीं कहा कि यह काम नहीं हो सकता। मेरा यह सूत्र था कि निराशा कभी न आए। 'नहीं हो सकता'—ऐसा हम क्यों सोचें? हम जब विश्वास करते हैं कि आत्मा में अनंत शक्ति है, तो नहीं हो सकता—यह क्यों सोचें? सफलता में एक बड़ा विघ्न है—निराशा; 'नहीं हो सकता' का भाव।

पुरुषार्थ का जीवन

सफलता में दूसरा विघ्न है—पुरुषार्थहीनता। हो सकता है, पर आदमी करता नहीं। मेरे कुछ साथी ऐसे भी हुए हैं, जिनमें काफी क्षमता है, पर क्षमता का उपयोग कम करते हैं तो सफलता उतनी नहीं मिलती। कर सकते हैं, पर नहीं करते—यह बहुत बड़ी बाधा है। मैंने हमेशा श्रम का जीवन जीया, हमेशा पुरुषार्थ किया और कुछ ही दिन पूर्व मैंने कहा था—आचार्यश्री तुलसी के पास मैं इसीलिए रह सका कि मैंने पुरुषार्थ का जीवन जीया। अगर पुरुषार्थ नहीं होता, आलस्य

को जागृत करने के लिए ध्यान का प्रयोग, नाड़ीतंत्रीय संतुलन का प्रयोग जरूरी है।

राष्ट्रपतिजी—क्या ध्यान के प्रयोग से यह संभव है?

आचार्यश्री—हां, यह नियम है कि शरीर के जिस भाग पर ध्यान करते हैं, वह विकसित हो जाता है। जहां-जहां प्राणधारा का प्रवाह जाता है, वह भाग सक्रिय होता जाता है। अभी तक 'मेडिकल साइंस' शरीर की सीमा तक, मस्तिष्क की सीमा तक ही पहुंचा है। प्राण तक नहीं पहुंच पाया है।

राष्ट्रपतिजी—हां, प्राण तक नहीं पहुंचे हैं। आचार्यजी, विद्यार्थियों में बहुत सारी समस्याएं जन्म ले रही हैं। तनाव और 'डिप्रेशन' (मानसिक अवसाद) से ग्रस्त है आज का विद्यार्थी। अनेक छात्रों का दिमाग भी विकसित नहीं है। मेरे पास एक छात्र शोध-कार्य कर रहा है। शोध का विषय है—'अविकसित मस्तिष्क वाले बच्चे एक चुनौती हैं।' उन्हें कैसे ठीक करें? इस संदर्भ में हमने कुछ प्रयोग किए। विकसित और अविकसित बच्चों के दो 'ग्रुप' बनाए। दोनों 'ग्रुपों' में दस-दस बच्चे रखे गए। उन सबकी 'एम. आर. आई' कराई। हमने जानने का प्रयत्न किया कि उनकी शरीर-रचना में कोई अंतर है क्या, शरीर-रचना में कोई अंतर नहीं मिला। किंतु 'न्यूरोन एक्टिविटी' में अंतर मिला, 'न्यूरोन कनेक्शन' में भी अंतर मिला। अविकसित बच्चे के 'लेफ्ट हेमिस्फियर' में 'न्यूरोन' की संख्या कम पाई गई। 'न्यूरोन कनेक्शन' भी कम थे। क्या हम 'राइट हेमिस्फियर' को जागृत करके 'लेफ्ट हेमिस्फियर' की कमी को पूरा कर सकते हैं? शरीर, मन, बुद्धि और चेतना—इन चारों को कैसे जगाएं? इस विषय में आपका क्या निर्देश है?

आचार्यश्री—इनके साथ प्राण और भाव—दो और जोड़ दें।

राष्ट्रपतिजी—आप ठीक कह रहे हैं। आचार्यजी, विदेह जनक और महर्षि अष्टावक्र अध्यात्म की उच्च भूमिका पर पहुंच गए थे। 'मैं चेतना हूं और चेतना मैं हूं'—उनके इस कथन का तात्पर्य क्या है?

आचार्यश्री—हमारे मस्तिष्क के तीन विभाग हैं—1. 'हायर कांशियस माइंड' 2. 'अनकांशियस माइंड' 3. 'कांशियस माइंड'। महर्षि अष्टावक्र और विदेह जनक 'हायर कांशियस माइंड' की भूमिका पर थे।

राष्ट्रपतिजी—क्या ब्रह्म से उनका संपर्क हो गया?

आचार्यश्री—प्रज्ञा, प्रातिभ-ज्ञान अथवा अंतर्दृष्टि का जागरण हो गया था।

राष्ट्रपतिजी—हम इस तक कैसे पहुंचें? क्या महावीर 'सुपर कांशियस' तक पहुंचे?

आचार्यश्री—जैन साधना पद्धति का एक प्रचलित शब्द है—'वीतराग।'

राष्ट्रपतिजी—(अपनी डायरी में यह शब्द को नोट करते हुए) वीतराग का तात्पर्य...?

आचार्यश्री—राग और द्वेष से परे, 'मैं और मेरा' से परे जो है—वह वीतराग है। वीतरागता की साधना 'हायर कांशियस' तक ले जाती है।

राष्ट्रपतिजी—सबसे बड़ी समस्या ही 'ईगो' की है। 'मैं और मेरा', आदमी के दिमाग से इसको कैसे निकालें?

आचार्यश्री—मस्तिष्क का जो आगे का हिस्सा (फ्रंटल लॉब) है, वह 'इमोशन' का क्षेत्र है, भाव का क्षेत्र है। यहां ध्यान का प्रयोग करने से 'ईगो' कम होता है। अहं, काम, क्रोध आदि शांत होते हैं। 'नेगेटिव इमोशन' (नकारात्मक भाव) निष्क्रिय होते चले जाते हैं और 'पोजिटिव इमोशन' (सकारात्मक भाव) सक्रिय हो जाते हैं।

मस्तिष्क का एक भाग है 'लिम्बिक सिस्टम', और उसका एक भाग है 'हाइपोथेलेमस'। हमारे 'हायर कांशियस माइंड' से जो 'वाईब्रेशन' (प्रकंपन) आते हैं, वे 'हाइपोथेलेमस' को प्रभावित करते हैं। विद्यार्थी हो या बड़ा आदमी—उसको बदलना चाहते हैं, तो 'हाइपोथेलेमस' पर ध्यान कराएं। बदलाव निश्चित आएगा।

(आचार्यवर ने ज्योति केंद्र पर अंगुली रखते हुए कहा) मस्तिष्क के इस केंद्र पर हम सफेद रंग का ध्यान कराते हैं, इससे क्रोध आदि आवेश शांत हो जाते हैं।

राष्ट्रपतिजी—आचार्यजी, आज की समस्या यह है कि इतना बड़ा यह राष्ट्र है और उस पर अहंकार और ममकार ही राज कर रहा है।

और प्रमाद होता; जो कहा, वह नहीं करता तो मुनि नथमलजी की तीसरे दिन ही छुट्टी हो जाती। उनके पास नहीं रह सकते। आचार्यश्री तुलसी के इतने कड़े अनुशासन में रहा। यह कोई सामान्य बात नहीं थी, बहुत कठिन बात थी। जो भी काम आया, मैंने सारा काम यथावत, विधिवत किया। पुरुषार्थ हमेशा आगे रहा। मैंने भाग्य को आगे नहीं रखा। भाग्य को पीछे रखा। पुरुषार्थ उसके आगे-आगे चला।

सतत जागरूकता

सफलता में तीसरा विघ्न है—प्रमाद, लापरवाही। ठीक है, हो जाएगा, कुछ नहीं—यह चिंतन सफलता में विघ्न उपस्थित करता है। आदमी बहुत काम करता है, पर उसकी सुरक्षा नहीं कर पाता। उसका भाग्य भी साथ नहीं देता और सफलता भी नहीं मिलती।

ये तीन विघ्न हैं सफलता के—निराशा, पुरुषार्थ-हीनता और प्रमाद। मैं सदा इनसे बचता रहा, दूर रहा। यह सोचता रहा—अगर ऐसा हुआ तो मैं जहां जाना चाहता हूं, जो करना चाहता हूं—वह नहीं हो सकेगा। इसलिए न कभी निराश हुआ, न कभी पुरुषार्थ-शून्य बना, न कभी आराम-तलब बना, न कभी आलसी बना और न कभी उपेक्षावान या लापरवाह बना। कुछ भी नहीं बना। मुझे बहुत साधु कहते थे, गृहस्थ भी बहुत कहते थे कि आप इतना श्रम करते हैं—आपको मिला क्या? सैकड़ों बार कानों में यह आवाज आती थी कि अमुक साधु को यह मिल गया, अमुक को यह मिल गया—सबसे ज्यादा श्रम और पुरुषार्थ आप कर रहे हैं, आखिर आपको क्या मिला?

मैंने कहा—कुछ भी नहीं मिला, मुझे कुछ पाना ही नहीं है। मुझे तो करना है। मिलने की बात क्यों सोचते हो? बड़ा मुश्किल था। कभी-कभी समझाने के लिए कितना समय लगा होगा। ऐसे प्रश्न पूछने वालों में हमारे आस-पास और न्यारा में रहने वाले, दूरदराज विचरने वाले कुछ साधु और गृहस्थ भी थे। उनका प्रश्न होता—'आपको क्या मिला?'

धैर्य और प्रतीक्षा

मैंने एक संकल्प लिया था—काम धैर्य के साथ होता है, जल्दबाजी में नहीं होता। कोई भी काम निष्फल नहीं होता। सफलता अवश्य मिलेगी, यदि तुम्हारे भीतर धैर्य है। धैर्य नहीं है, उतावली करते हो तो कच्चा फल अवश्य ही खट्टा रह जाएगा। फल को तब तोड़ो जब वह पूरा पक जाए। पक्व आम में जो मिठास होती है, वह कच्चा तोड़ने में नहीं। भले ही फिर उसे कृत्रिम संसाधनों से पकाओ, उसमें वह रस नहीं आ सकता।

जीवन की सफलता का बहुत बड़ा सूत्र है—धैर्य। तुम अपना धैर्य मत खोओ। धैर्य रखो। टॉलस्टाय से एक युवक ने पूछा—'धैर्य कब तक रखें? क्या चलनी में पानी टिक जाएगा?' टॉलस्टाय ने कहा—'टिक जाएगा। धैर्य रखो। जब पानी बर्फ बन जाएगा तो चलनी में भी टिक जाएगा।'

बहुत लोग जल्दी उतावले हो जाते हैं। थोड़ा-सा काम करते हैं और कहते हैं कि मुझे कुछ मिलना चाहिए। अरे! अभी तो तुम कच्चे हो, अभी मिलने की बात करते हो? यह मिलना चाहिए, वह मिलना चाहिए—कई आकांक्षाएं जग जाती हैं, पर कब मिलना चाहिए? जब पक जाओगे तब मिलना चाहिए। पहले मिला तो तुम्हारे भीतर खटास और रह जाएगी—केरी ही मिलेगी, आम नहीं मिलेगा। सफलता का बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है धैर्य। मैंने देखा—जिन-जिन व्यक्तियों ने धैर्य रखा, बहुत आगे बढ़ गए। जिन्होंने उतावलापन किया, वे पिछड़ गए, पीछे चले गए। तुम्हें मिलेगा पर प्रतीक्षा करो। देखो, क्या होता है? जल्दबाजी कभी मत करो।

व्यवहार-कौशल

इसके साथ ही सफलता के लिए एक और सूत्र पर हम विचार करें—जिसको मैंने जीया है और वह है व्यवहार कौशल। हमेशा व्यवहार के प्रति मैं जागरूक रहा। यद्यपि मेरी रुचि प्रारंभ से ही ध्यान में, एकांत में ही अधिक थी। गुरुदेव ने लिखा भी—'इनकी रुचि निरंतर ध्यान में, एकांत में जा रही है।' फिर भी व्यवहार में कभी भी अप्रियता का भाव नहीं आने दिया। चाहे मेरा कितना ही मनोभाव था, पर गुरुदेव ने जो कह दिया—वह हो गया। दूसरे साधुओं ने जो कहा—वह हो गया। व्यवहार-कौशल सफलता का एक बड़ा सूत्र है। व्यक्ति कितना ही जानकार है, तत्त्वज्ञ है, यदि व्यवहार-कुशल नहीं है तो वह कुछ नहीं कर पाता। व्यवहार-कौशल, जिसको आज की भाषा में कहते हैं—'इमोशनल इंटेलीजेंसी'। यह हमारा व्यवहार-कौशल है।

अनिष्ट न करने का संकल्प

मुझे याद है कि इसके लिए अपने मन में मैंने जो संकल्प किए थे, उनमें एक तो यह था—'मैं वैसा कोई काम नहीं करूंगा, जो काम आचार्यश्री तुलसी को कष्ट दे, उनको इष्ट न हो। उन्हें यह न सोचना पड़े कि मैंने इस व्यक्ति पर इतना श्रम किया, आज यह किधर जा रहा है।' एक प्रारंभ का संकल्प था। इस संकल्प ने मेरा रास्ता हमेशा प्रशस्त रखा। रास्ते में कभी रुकावट नहीं आने दी। दूसरा संकल्प यह था—'दूसरों का अनिष्ट चिंतन नहीं करूंगा।' आदमी का

आचार्यश्री—जो 'ट्रेनिंग' लेकर बड़े लोग बनते हैं, वे बदल सकते हैं। सत्ता पर जो हैं, वे बिना 'ट्रेनिंग' आए हुए हैं, इसलिए यह समस्या है। यदि शुरू से ही 'ट्रेनिंग' दे दी जाए तो यह समस्या नहीं आएगी।

राष्ट्रपतिजी—बच्चों से ही 'ट्रेनिंग' को शुरू करना होगा?

आचार्यश्री—हां, आपका और हमारा विचार एक है। यदि वर्तमान पीढ़ी पर प्रयत्न करें तो भावी पीढ़ी बहुंत अच्छी बन सकती है। (आचार्यवर ने झाबुआ जिले में चल रहे प्रयोगों का उल्लेख करते हुए कहा) झाबुआ जिले के आदिवासी अंचल में जीवन विज्ञान के प्रयोग शुरू हुए हैं। उस प्रशिक्षण के उत्साहवर्द्धक परिणाम आए हैं।

राष्ट्रपतिजी—झाबुआ जिला, जो मध्यप्रदेश में है और बहुत सुंदर है?

आचार्यश्री—हां, सर्वोदयी विचारक बालविजयजी ने वहां चल रहे प्रयोगों को निकटता से देखा। उन्होंने कहा—यदि पांच वर्ष तक लगातार ये प्रयोग चलते रहे तो कायाकल्प हो जाएगा। देश का यह प्रथम जिला बन जाएगा। बच्चों में जो सकारात्मक बदलाव आ रहा है, वह आश्चर्यकारी है।

राष्ट्रपतिजी—आप क्या प्रयोग कराते हैं?

आचार्यश्री—ध्यान का प्रयोग कराते हैं। जिससे 'इमोशन' पर 'कंट्रोल' करना सीख जाएं। आसन-प्राणायाम, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा और संकल्प के प्रयोग भी कराए जाते हैं। इनसे 'पिच्युटरी' और 'पीनियल ग्लैण्ड' का जागरण होता है और 'एड्रीनल ग्लैण्ड' पर नियंत्रण होता है। केवल सैद्धांतिक नहीं, प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण का सारा कार्य वैज्ञानिक दृष्टि से हो रहा है।

राष्ट्रपतिजी—(मुस्कराते हुए) और वह अध्यात्म के द्वारा हो रहा है?

आचार्यश्री—हमारे गुरु आचार्यश्री तुलसी कहते थे—आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण आज की सबसे बड़ी अपेक्षा है। कोरा अध्यात्म बहुत उपयोगी नहीं होता और कोरा विज्ञान भी खतरनाक हो सकता है। इसलिए ऐसे व्यक्तियों का निर्माण जरूरी है जो आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों हों।

राष्ट्रपतिजी—अध्यात्म और विज्ञान—दोनों जुड़े हुए हैं?

आचार्यश्री—वस्तुतः विज्ञान और अध्यात्म दो नहीं हैं।

राष्ट्रपतिजी—'हां!'

आचार्यश्री—विज्ञान भी सत्य की खोज के लिए है और अध्यात्म भी सत्य की खोज के लिए है।

राष्ट्रपतिजी—एक आध्यात्मिक वैज्ञानिक हो सकता है और एक वैज्ञानिक आध्यात्मिक हो सकता है। आज समस्या दूसरी है और वह यह है कि एक धार्मिक आध्यात्मिक कैसे बने? आज व्यक्ति धार्मिक है, पर आध्यात्मिक नहीं है।

आचार्यश्री—आप ठीक कह रहे हैं। एक समय था—जब धर्म साधकों के हाथ में था। आज वह धर्माधिकारियों के हाथ में आ गया है। महावीर, बुद्ध, ईसा, नानक, जरथुस्त्र आदि सब साधक थे। आज उनके नाम पर केवल धर्म का उपदेश देने वाले हैं। आज साधना कम और धन-सत्ता प्रमुख हो गई।

राष्ट्रपतिजी—भारत में हजारों-लाखों लोग धर्म को मानते हैं। उनमें परिवर्तन कैसे करें? उन्हें आध्यात्मिक कैसे बनाएं?

आचार्यश्री—यह बहुत कठिन है। यदि विद्यार्थियों से प्रारंभ करें, उनकी धारणा को बदलें, तो कुछ सफलता मिल सकती है। हम इस दिशा में काम कर रहे हैं, आपके दो-चार प्रतिनिधि साथ रहें तो काम काफी आगे बढ़ सकता है।

राष्ट्रपतिजी—मैं इन दो वर्षों में बीस हजार बच्चों से मिला हूं। मैं क्यों मिलता हूं? आचार्यजी, यह मेरा मिशन है, मेरे मन में लगन है कि राष्ट्र का आध्यात्मिक विकास कैसे हो? यह हमारी भारत की विरासत है। महावीर, बुद्ध आदि ने अध्यात्म का जो विकास किया, जो सूत्र दिए—उनको व्यापक बनाना जरूरी है।

आचार्यजी, मैं नगालैंड गया। आठवीं कक्षा तक के बच्चों से मिला। एक बच्चे ने कहा—मैं शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहता हूं। सुखी, सुरक्षित और समृद्ध जीवन जीना चाहता हूं। आप हमें बताएं कि यह कब होगा? कब हमारा भारत देश सुंदर होगा, सुरक्षित और समृद्ध होगा? इसमें चारों ओर शांति का वातावरण होगा? मैंने

भाग्य कब खराब होता है? जब वह दूसरों के बारे में अनिष्ट चिंतन करता है, दूसरों के बारे में खराब बात सोचता है—तब उसका भाग्य बिगड़ता है। जिसके बारे में सोचता है, उसका तो कुछ बिगड़ता ही नहीं है और जो सोचता है, उसका भाग्य खराब हो जाता है। किसी का भी अनिष्ट न सोचने का संकल्प था। मुझे याद ही नहीं है कि मैंने कभी दूसरों के अनिष्ट की कल्पना की हो। नौवें दशक के जीवन तक भी मुझे याद नहीं है कि मैंने किसी के बारे में कुछ अनिष्ट किया हो अथवा सोचा हो। यह जरूर है कि मैं दूसरों के लिएं कुछ ईर्ष्या का पात्र रहा हूं। पर मैंने कभी किसी के बारे में अनिष्ट चिंतन नहीं किया। इसके सबसे ज्यादा कोई साक्ष्य रहे तो मेरे गुरु आचार्यश्री तुलसी रहे। उन्होंने एक बार कहा था—'इनका (आचार्यश्री महाप्रज्ञ) इसीलिए विकास हो रहा है कि ये दूसरों के भले की बात सोचते हैं, कभी दूसरों के अनिष्ट की बात नहीं सोचते।' आपको अगर सफल होना है तो जीवन-शैली में इस बात को अपनाना होगा।

उपशांत कषाय

अपने भावों पर, 'इमोशन' पर नियंत्रण रखना भी आवश्यक माना और किया। आठ दशकों का जीवन पूरा हो गया। तयासीवां वर्ष चल रहा है। मुझे कोई पूछे कि कितनी बार क्रोध किया तो याद करना पड़ेगा कि कब किया? अहंकार कभी छुआ नहीं। लोग कहते हैं—ऋजु हैं। माया-कपट का प्रश्न नहीं था। लोभ का भी नहीं रहा। इन भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण नहीं रहा। मैं मानता हूं कि जो व्यक्ति इस क्षेत्र में सफल होना चाहता है अथवा किसी भी क्षेत्र में सफल होना चाहता है, उसके लिए अपने संवेगों पर, भावों पर नियंत्रण रखना बहुत आवश्यक है, अन्यथा वे फिसलन पैदा कर देते हैं।

प्रखर तर्क : प्रगाढ़ श्रद्धा

मैंने श्रद्धा का जीवन जीया। श्रद्धा और तर्क—हमारे जीवन-रथ के दो पहिए हैं, दो चक्के हैं। मैं तर्क को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूं। तर्क के बिना सत्य को खोजने का आगे रास्ता ही नहीं मिलता। किंतु श्रद्धाहीन तर्क को भी मैं खतरनाक मानता हूं, मानता रहा हूं। मैंने एक सूत्र बनाया—व्यवहार के क्षेत्र में कभी तर्क का प्रयोग नहीं करना है। जहां सिद्धांत का क्षेत्र है, दर्शन का क्षेत्र है, वहां तो तर्क में किसी से पीछे रहना मुझे पसंद भी नहीं था। मेरा सौभाग्य है कि मैं पीछे नहीं रहा। जहां व्यवहार का क्षेत्र है, वहां तर्क का प्रवेश-द्वार बंद रहे, वहां तर्क नहीं हो सकता। वहां तो विनम्रता और श्रद्धा होनी चाहिए।

श्रद्धा की बात मैं कहूं, पता नहीं कैसी लगेगी, पर हमारे आस-पास के लोग भी कहते थे—मुनि नथमलजी का क्या? आचार्य तुलसी दिन को रात कह दें तो समर्थन कर देंगे। आचार्यश्री तुलसी रात को दिन कह दें तो मुनि नथमलजी उसका समर्थन कर देंगे। यह एक बोलचाल की भाषा जैसी बन गई थी।

मैं सौभाग्य मानता हूं कि श्रद्धा में भी मेरा स्थान किसी से नीचे नहीं रहा। तर्क में भी पीछे नहीं रहा। लोगों को आश्चर्य तो होता था कि इतना प्रखर तर्क और फिर इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा। अगर जीवन में सफल होना है तो आप एकांगी न बनें, श्रद्धा और तर्क का ऐसा समन्वय करें, क्षेत्रों का विभाग करें। जहां तत्त्वचर्चा का प्रश्न है, वहां आपका तर्क प्रबल हो। जहां जीवन-व्यवहार का प्रश्न है, वहां आपकी श्रद्धा प्रधान रहे—वह चक्षु उद्घाटित रहे।

केंद्रीय लक्ष्य बनाएं

एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। हर व्यक्ति, विशेषतः हमारे साधु-साध्वियां और समणियां, एक लक्ष्य निर्धारित करें। केंद्रीय लक्ष्य एक रहे। जीवन में सामयिक लक्ष्य बहुत हैं। किंतु एक लक्ष्य केंद्र में रहे, जो हमारे जीवन का 'न्यूक्लीयस' रहे, परिधि नहीं। केंद्र में एक लक्ष्य बना लें। उतार-चढ़ाव जीवन में आते हैं। चाहे साधना का क्षेत्र हो, व्यापार का क्षेत्र हो या राजनीति का क्षेत्र—उतार-चढ़ाव से मुक्त कोई नहीं होता। पर लक्ष्य के प्रति हमारा दृढ़ मनोभाव हो, लक्ष्य के प्रति हम समर्पित रहें तो सारे उतार-चढ़ाव पार कर हम अपनी मंजिल तक पहुंच सकते हैं। लक्ष्य का स्पष्ट निर्धारण करें—मुझे किस दिशा में आगे जाना है।

निश्चित रहा लक्ष्य

मैंने लक्ष्य बनाया था—मुझे अच्छा साधु बनना है और मुझे जिन-शासन की, भिक्षु-शासन की और मानवता की सेवा में लगना है, काम करना है। आज भी वही लक्ष्य है। लक्ष्य में कोई अंतर नहीं आया। समस्याएं आती रहती हैं, बाधाएं आती हैं, उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, पर एक लक्ष्य आपका निश्चित है, तो आप पहुंच जाएंगे। लक्ष्य नहीं बनाया है तो भटक जाएंगे। लक्ष्यहीन जीवन कहीं नहीं पहुंचता। हर व्यक्ति के लिए जरूरी है कि जीवन के केंद्रीय लक्ष्य का निर्धारण करे, सामयिक लक्ष्य का नहीं। वे तो बदलते रहते हैं। मैंने जिस केंद्रीय लक्ष्य का निर्धारण किया, मुझे संतोष है कि उस लक्ष्य से कहीं इधर-उधर सूई नहीं जा सकी। जिसका लक्ष्य निश्चित है, वह इधर-उधर

उनसे कहा—मैं आचार्यजी—गुरुजी से पूछूंगा और तुम्हें बताऊंगा।

आचार्यजी, भारत का आर्थिक विकास कैसे हो सकता है? वह आर्थिक दृष्टि से कैसे समृद्ध हो सकता है? यह मैं जानता हूं। ऐसा भारत हम बना सकते हैं। किंतु भारत के लोग आध्यात्मिक चिंतन में कैसे आगे बढ़ें? यह मार्ग आप सुझाएं।

आचार्यश्री—आप अपने प्रतिनिधि को हमारे पास भेजें। इस विषय पर गहरा चिंतन चले। एक योजना बनाएं और इस दिशा में सघन कार्य करें।

राष्ट्रपतिजी—कांजीवरम् के शंकराचार्य, ब्रह्माकुमारी, स्वामीनारायण, आर्चविशप आदि सभी धर्म-संप्रदायों के प्रमुख लोग मिलकर एक सेतु बना सकते हैं।

आचार्यश्री—यह बहुत अच्छा विचार है।

राष्ट्रपतिजी—क्या आपका आशीर्वाद है?

आचार्यश्री—हां, हमने 'अहिंसा-समवाय' मंच का निर्माण किया है। उसका उद्देश्य भी यही है। अहिंसा एवं विश्व शांति के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति एवं संस्थाएं मिलकर इस विषय पर सह चिंतन करें। सबकी समन्वित शक्ति से इस कार्य को बहुत बल मिलेगा।

राष्ट्रपतिजी—हां।

आचार्यश्री—अभी हम गुजरात में थे। वहां सांप्रदायिक दंगे हुए। हमने हिंदू और मुसलमान—दोनों समुदायों के प्रमुख व्यक्तियों को याद किया। उनसे वार्तालाप किया। हमने यह समझाया कि हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। अनेक गोष्ठियां हुईं। हमारे चिंतन का सबने सम्मान किया। शांतिपूर्ण वातावरण का निर्माण हो गया। यदि धार्मिक नेता बदल जाएं तो सांप्रदायिक कट्टरता से उपजने वाली हिंसा समाप्त हो जाए।

राष्ट्रपतिजी—(मुस्कराते हुए) आप उनको 'फ्रंटल लॉब' पर ध्यान करा दें।

आचार्यश्री—अहिंसा को भी ठीक से समझा नहीं गया है। आडवाणीजी आए थे। मैंने प्रवचन में कहा—अहिंसा धर्म है, एक मुनि के लिए। अहिंसा नीति है, सामाजिक प्रमुख व्यक्तियों और शासकों के लिए। अहिंसा कूटनीति है, शासक वर्ग के लिए। जो विभिन्न विचारधाराओं, विभिन्न जातियों और संप्रदायों के लोगों में सामंजस्य करता है, वह दीर्घकालीन नीति से सफल हो सकता है। जहां सामंजस्य होता है, वहां सद्भावना का वातावरण बना रहता है। यदि विद्यार्थी में प्रारंभ से ही सामंजस्य, सहिष्णुता, मैत्री, अहिंसा के संस्कार भरे जाएं तो राष्ट्र की अनेक समस्याएं सुलझ सकती हैं। आपके पास जो शोध-छात्र 'रिसर्च' कर रहा है, यदि वह परिवर्तन के इन प्रयोगों का अध्ययन करे तो शोध के कुछ सार्थक परिणाम आ सकते हैं।

राष्ट्रपतिजी—मैं उसे आपके पास निश्चित भेजूंगा।

आचार्यश्री—आपके और हमारे बीच चिंतन की यह प्रक्रिया चलती रहे—यह आवश्यक है। आप सब जगह नहीं आ सकते, लेकिन आपके प्रतिनिधि संवाद का सेतु बन सकते हैं।

राष्ट्रपतिजी—मेरे मित्र वैज्ञानिक डॉ. वाई. एस. राजन आपसे मेरे प्रतिनिधि के रूप में मिलते रहेंगे।

आचार्यश्री—आपका वैज्ञानिक चिंतन राष्ट्र के लिए सर्वाधिक कल्याणकारी हो सकता है। सुकरात ने कहा था—एक शासक को दार्शनिक होना चाहिए। आज हम इस भाषा में कहना चाहते हैं—'एक शासक को वैज्ञानिक होना चाहिए।' यदि शासक वैज्ञानिक होगा तो वह समस्या की जड़ तक पहुंचने का प्रयत्न करेगा। उसमें 'ईगो' भी कम होना चाहिए।

राष्ट्रपतिजी—(मुस्कराते हुए, यह वाक्य पुनः दोहराया) और यदि होगा तो 'फ्रंटल लॉब' पर 'मेडिटेशन' करा दीजिएगा। (एक नई जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए) क्या इसमें श्वास का भी कोई संबंध है?

आचार्यश्री—श्वास का गहरा संबंध है। 'इमोशन' पर 'कंट्रोल' करने में दीर्घश्वास प्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक व्यक्ति सामान्यतः एक मिनट में पंद्रह-सोलह श्वास लेता है। जब आवेग-आवेश प्रबल होता है और क्रोध, भय, वासना आदि का आवेग तीव्र होता है, तब यह संख्या तीस-चालीस हो जाती है। तीव्रतम आवेश में उससे भी अधिक हो जाती है। रूपक की भाषा में कहें तो 'इमोशन' राजा है, वह वायुयान के बिना नहीं आएगा। श्वास की संख्या कम होगी तो 'इमोशन' शांत रहेंगे। दीर्घश्वास से 'राइट हेमिस्फियर' जागृत होता है।

भटकता नहीं है। जिसका लक्ष्य निश्चित नहीं होता, वह इधर-उधर भटकता रहता है। सोचता है—यह करूं? वह करूं? क्या करूं?

प्रलोभन से अविचलित

मेरे सामने भी कितने प्रलोभन आए? कभी-कभी कुछ विरोधी चिंतन करने वालों ने कहा—बस, हमें और कुछ नहीं चाहिए, एक मुनि नथमलजी झुक जाएं तो काम हो जाए। ऐसा लगा कि बड़ा प्रलोभन है सामने। पर लक्ष्य निश्चित था, कभी इधर-उधर झुकने का अवसर ही नहीं आया। मेरे सामने मुंबई का श्रावक रमणीकभाई आया। उसने कहा—आचार्य रजनीश ने कहा है कि मुनि नथमलजी जो काम कर रहे हैं—वे अलग न करें, वे मेरे साथ मिलकर काम करें। उसने बड़े ऊंचे सपने दिखाए। मैंने कहा—यह हमारा कोई प्रश्न नहीं है। हम जिस लक्ष्य से चल रहे हैं, हमारा काम हो रहा है। और भी पता नहीं, कितने लोग आते हैं, कहते हैं—उनके साथ यह हो सकता है, वह हो सकता है। कितने प्रलोभन और बड़े-बड़े सपने दिखाते हैं। मैंने कहा—मैं सपना लेना भी नहीं जानता। रात को भी कम आते हैं। हमें तो सपना लेना ही नहीं है, लक्ष्य के साथ चलना है। इसीलिए हम ठीक चल सके। यदि लक्ष्य निश्चित नहीं होता तो कहीं इधर-उधर गति हो जाती।

सफलता के साथ जीएं

अपने जीवन के कुछ रहस्य मैंने आज बतलाए हैं। बहुत कम लोग जानते हैं, इन बातों को। पास रहने वाले भी कम जानते हैं। ये जीवन के रहस्य हैं। आदमी अपनी जीवन-शैली इन रहस्यों के आधार पर बनाए। किस प्रकार वह सफल हो सकता है, उन सूत्रों को पकड़े तो उनके सहारे वह आगे बढ़ सकता है।

युवाचार्यश्री महाश्रमण ने एक प्रश्न कर दिया—इसलिए यह सारा बताना पड़ा। अन्यथा कोई अपेक्षा नहीं थी।

मैं मानता हूं—जीना और मरना—यह तो नियम है। इसमें कोई कठिनाई वाली बात नहीं है।

आचार्यश्री भिक्षु की इच्छा-मृत्यु हुई थी। मैं मानता हूं—आचार्यश्री तुलसी की भी इच्छा-मृत्यु हुई। बीमारी से कोई मृत्यु नहीं हुई। कुंडलियां देखने वाले लोग मेरे लिए भी लिखते हैं—इच्छा-मृत्यु का वरण करेंगे। जीना-मरना खास बात नहीं है। किंतु हम जब तक जीएं, इन सफलता के सूत्रों को, लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए जीएं तो हमारा जीना स्वयं के लिए, दूसरों के लिए भी यत्किंचित लाभकर बन सकता है।

शक्ति है सत्यनिष्ठा में

मुझे लोग बहुत पूछते हैं—आपके पास इतने बड़े-बड़े लोग क्यों आते हैं? मैं कहता हूं—मैं तो किसी को बुलाता नहीं हूं। मैंने किसी को बुलाया नहीं। उनको लगता है कि कुछ मिल सकता है, कुछ मार्गदर्शन मिल सकता है। मैंने हमारे राष्ट्रपतिजी से कहा—यह बात आगे चलेगी, इसलिए संपर्क-सूत्र निश्चित करना होगा। उन्होंने कहा—'इसमें क्या है? मैं कम-से-कम वर्ष में तीन बार तो आपके पास आना ही चाहता हूं।' क्यों आते हैं? अगर आप स्वयं एक सत्य के साथ चल रहे हैं, तो सत्य की सबको जरूरत है। आप भी झूठ के साथ चल रहे हैं तो कोई आएगा नहीं। एक बार आ गया तो दूसरी बार नहीं आएगा।

राजस्थान की प्रसिद्ध कथा है—एक सुआ (तोता) राजस्थान के मरुस्थल में चला गया। खेजड़ी के वृक्ष का फल लटक रहा था। उसने चोंच से खाना चाहा। फल भीतर से कठोर था। चोंच टूट गई।

सत्यनिष्ठा हो तो सब-कुछ होता है। मुझे यह सत्य-निष्ठा आचार्य भिक्षु, श्रीमज्जयाचार्य, आचार्य तुलसी तथा और भी अनेक आचार्यों द्वारा मिली। आदमी अपनी सत्य-निष्ठा पर रहे, फिर उसे कुछ भी सोचने की जरूरत नहीं है। कौन आता है? कौन नहीं आता? कौन क्या करता है? इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। बस, उसके लिए सत्यनिष्ठा पर्याप्त है। उस सत्यनिष्ठा में इतनी शक्ति है कि जिसको अपेक्षा है, वह स्वतः आएगा।

रहस्य तेरापंथ की शक्ति का

मैंने अपने जीवन की सफलता के कुछ रहस्य बताए। दो दिन तक कार्यक्रम चला। काफी वक्ता बोले। लोगों ने कहा—'कल का कार्यक्रम इतना सरस रहा। तीन घंटा और चलता तो भी लोग नहीं उठते।' बहुत सरस कार्यक्रम रहा। साहित्य के लोकार्पण का जो कार्यक्रम हुआ, वह बहुत आकर्षक रहा। अनेक साधु-साध्वियों ने अपनी भावनाएं व्यक्त कीं। सबका हृदय बोल रहा था। (आचार्यवर ने बोलने वाले सभी साधु-साध्वियों को इक्कीस कल्याणक प्रदान किए।)

मेरा यह सौभाग्य है कि तेरापंथ जैसा प्रबुद्ध और अनुशासित साधु-साध्वी समाज मिला। दो-चार होने पर भी गर्व हो सकता है। यहां तो चारों ओर प्रबुद्धता-ही-प्रबुद्धता झलकती है। राजा भोज के राज्य की यह व्यवस्था थी कि जो संस्कृत का वक्ता नहीं है, वह राज्य में न रहे। यदि

शेष पृष्ठ 31 पर

(राष्ट्रपति महोदय को अंग्रेजी में प्रकाशित प्रेक्षाध्यान : श्वास प्रेक्षा तथा प्रेक्षाध्यान के सभी ग्रंथ उपहृत किए गए। आचार्यवर की सद्यःप्रकाशित अंग्रेजी पुस्तकें भी दी गईं। राष्ट्रपति ने एक-एक पुस्तक का अवलोकन किया। उनकी दृष्टि 'थोट एट सनराइज' पुस्तक पर अटक गई।)

राष्ट्रपतिजी—इसमें क्या है?

आचार्यश्री—मैंने इसमें प्रतिदिन का एक विचार लिखा है। हिंदी में इस पुस्तक का नाम है—'सुबह का चिंतन।'

राष्ट्रपतिजी—मैं आज का विचार पढ़ता हूं। (यह कहते हुए राष्ट्रपतिजी ने 14 फरवरी का पूरा विचार पढ़कर सुनाया)

आचार्यश्री—आज आपको काफी समय हो गया है।

राष्ट्रपतिजी—आप यहां कब तक हैं?

आचार्यश्री—मार्च, अप्रैल दो महीने यहां रहेंगे। उसके बाद सूरत की ओर जाना है।

राष्ट्रपतिजी—आप अपना पूरा 'प्रोग्राम' मुझे दे दीजिए। मैं देखता हूं—मैं पुनः कहां आ सकता हूं। (यह कहते हुए राष्ट्रपति का ध्यान अपनी डायरी में अंकित 'नोट्स' पर केंद्रित हुआ।) आचार्यश्री, क्या यह 'ईगो', 'ऐंगर' (अहं और क्रोध) कम हो सकता है?

आचार्यश्री—अवश्य हो सकता है। प्रेक्षाध्यान शिविर में ऐसे अनेक लोग आए, जिन्होंने अभ्यास किया और इन पर नियंत्रण स्थापित किया। मुंबई की ही घटना है। इनके (मुनि महेंद्रकुमारजी की ओर इंगित करते हुए) संसारपक्षीय भाई को भयंकर गुस्सा आता था। पूरा परिवार अशांत हो जाता था। उन्होंने ध्यान का अभ्यास किया। क्रोध उपशांत हो गया। पत्नी ने देखा—पतिदेव सचमुच बदल गए हैं। उन्होंने अपने ससुर को यह बात बताई। ससुर ने कहा—थोड़े दिन ठहरो। आखिर उन्होंने यह स्वीकार किया कि सचमुच बदलाव आया है। जो प्रत्यक्ष है, उसे कैसे नकारा जा सकता है। (आचार्यश्री ने एक नया प्रस्ताव रखा) आप पांच ऐसे विद्यार्थियों को भेजें, जो बहुत 'एंग्री' हों। हम उन्हें पांच सप्ताह प्रेक्षाध्यान के प्रयोग कराएंगे। आप स्वयं देखें—उसका क्या परिणाम आता है?

राष्ट्रपतिजी—(मुस्कराते हुए) तब तो मुझे अपने नेताओं को भेजना पड़ेगा।

आचार्यश्री—यह प्रयोग भी किया जा सकता है।

राष्ट्रपतिजी—मैं बहुत प्रसन्न हूं। मुझे आज नया प्रकाश और नई दृष्टि मिली है। किस प्रकार से हम जनता को आध्यात्मिक बना सकते हैं? इस दिशा में कैसे सफल हो सकते हैं? इसका सुंदर पथदर्शन मिला है।

आचार्यश्री—चिंतन का क्रम लंबे समय तक चले तो हम अनेक समस्याओं के समाधान खोजने में सफल हो सकते हैं।

राष्ट्रपतिजी—मैं एक साल में दो-तीन बार तो आना ही चाहता हूं। अब आपसे निरंतर संपर्क बना रहेगा। आपका मार्गदर्शन न केवल मेरे लिए, पूरे देश के लिए कल्याणकारी है।

❑ ❑

राष्ट्रपतिजी ने प्रस्थान करने से पूर्व आचार्यवर, युवाचार्यवर को भावपूर्ण प्रणाम किया। इस वार्तालाप में मुनि सुखलालजी, मुनि किशनलालजी, मुनि महेंद्रकुमारजी, मुनि धनंजयकुमारजी, मुनि कुमारश्रमणजी भी सहभागी बने।

राष्ट्रपतिजी जैसे ही खड़े हुए, अनेक बालमुनि-कक्ष में आ गए। राष्ट्रपतिजी बालमुनियों के बीच चले गए। मुनि मुदित, मुनि महावीर, मुनि मनन आदि के प्रसन्न चेहरों पर दृष्टिपात करते हुए राष्ट्रपतिजी ने पूछा—आप बहुत प्रसन्न रहते हैं, आपकी प्रसन्नता का रहस्य क्या है? बालमुनि मुदितकुमार ने कहा—मैं साधु हूं, इसलिए प्रसन्न हूं। बालमुनि मननकुमार ने कहा—यह आचार्यवर के आशीर्वाद का फल है। बालमुनियों के इस उत्तर से प्रभावित राष्ट्रपतिजी ने एक अंग्रेजी की कविता भी सुनाई।

लगा कि राष्ट्रपतिजी का मुख प्रसन्नता से जैसे दमक रहा हो। वे आचार्यवर के कक्ष से बाहर हॉल में आ गए। यहां समग्र साधु-समुदाय को प्रणाम किया। वहां से निकलते ही 'मीडिया' के लोगों ने उन्हें घेर लिया। पत्रकारों का सवाल था—आपको यहां क्या मिला? राष्ट्रपति ने एक ही शब्द में उत्तर दिया—'नया प्रकाश और नई उर्जा।' ❖

पूरे देश के समक्ष जो दृश्य उपस्थित है वह यह है कि आज जातीयता ने अंतःजातीय विभाजक के रूप में तथा सांप्रदायिकता ने राष्ट्रीय विभाजक के रूप में मजबूत स्थान हासिल कर लिया है। यही कारण है कि धर्म, संप्रदाय, सामाजिक न्याय, समता, एकता, अखंडता आदि शब्दों के अर्थ बदल गए हैं। ये अब एक तरह से अनर्थवादी हो गए हैं। अपने वास्तविक अर्थों को ये शब्द काफी पीछे छोड़ चले हैं। आज देश उस खंदक में फंसा हुआ महसूस कर रहा है जहां से निकल पाना संभव ही नहीं लग रहा है। अब तो प्रतिस्पर्धा इस बात की है कि कौन कितना सांप्रदायिक और कितना बड़ा जातिवादी हो सकता है?

इस विषमता का क्या उपाय हो

मुनि लोकप्रकाश 'लोकेश'

सांप्रदायिकता और जातिवाद यूं तो किसी-न-किसी रूप में हमेशा ही मौजूद रहे हैं, लेकिन जो वीभत्स और खतरनाक रूप आज हम देख रहे हैं, वह सोचनीय है। मनुष्य की धर्मशाखा के रूप में सांप्रदायिकता का तथा उसकी निजी पहचान के रूप में जाति का महत्त्व हुआ करता था, लेकिन आजादी के समय से दोनों की संरचना में तेजी से बदलाव शुरू हो गया। तब अंग्रेजों ने इनकी गलत ढंग से व्याख्याएं कीं और हम भी उसी में फंसते चले गए। हमारी निजी मान्यताओं की विकृत व्याख्याओं को ही अंग्रेजों ने अपना हथियार बना लिया और समाज में विभाजन की नींव डालने में उन्होंने सफलता भी हासिल कर ली।

लेकिन जाति और सांप्रदायिकता ने वीभत्स रूप तब लिया जब इनका इस्तेमाल राजनीति में वोट के साधन के रूप में होने लगा। हम देख रहे हैं कि पिछले दो-ढाई दशक में राजनीति पर सांप्रदायिकता की छाया लगातार घनी होती गई है। आज राजनीति ने लोक-सेवा और परस्परता का भाव छोड़कर वोट जुटाने के लिए सांप्रदायिक नीतियों का सहारा ले लिया है। इससे जहां एक ओर खास तरह के जनाधार का निर्माण हुआ, वहीं लोकतंत्र पर संकीर्णता और क्षुद्र हितवाद के खतरे भी बढ़े। किसी बेहतर विकल्प के बजाए राजनीतिक दलों के समाज-तोड़क विकल्पों में आज तो पूरा देश दुष्चक्र में फंसा हुआ महसूस कर रहा है। जातिवादी राजनीति का आज हर कोई शिकार है। शोषित-पीड़ित समाज के सम्मान और हकों के लिए आधार माना जाने वाला आरक्षण भी वोट बटोरो' राजनीति का साधन बन गया।

पूरे देश के समक्ष जो दृश्य उपस्थित है वह यह है कि आज जातीयता ने अंतःजातीय विभाजक के रूप में तथा सांप्रदायिकता ने राष्ट्रीय विभाजक के रूप में मजबूत स्थान हासिल कर लिया है। यही कारण है कि धर्म, संप्रदाय, सामाजिक न्याय, समता, एकता, अखंडता आदि शब्दों के अर्थ बदल गए हैं। ये अब एक तरह से अनर्थवादी हो गए हैं। अपने वास्तविक अर्थों को ये शब्द काफी पीछे छोड़ चले हैं। आज देश उस खंदक में फंसा हुआ महसूस कर रहा है जहां से निकल पाना संभव ही नहीं लग रहा है। अब तो प्रतिस्पर्धा इस बात की है कि कौन कितना सांप्रदायिक और कितना बड़ा जातिवादी हो सकता है? इस मानसिकता के कारण देश और समाज के टुकड़े-टुकड़े होने की स्थिति पैदा हो गई है। तिस पर अंतरराष्ट्रीय पूंजीवाद की हवा चल पड़ी है जो धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता को अपनी तरह से परिभाषित कर रही है। इसने टी. वी. आदि संचार माध्यमों से जिस तरह की कला-संस्कृति के फैलाव का संकेत दिया है, उसने भारतीय संस्कृति को लीलने का काम शुरू कर दिया है। यह याद रखना चाहिए कि यहां की संस्कृति, साहित्य, कला और सभ्यता का अंग्रेजों ने जितना नुकसान किया, उससे ज्यादा नुकसान अंतरराष्ट्रीय पूंजीवाद करने वाला है। जिस दिन इसके हाथ में भारत की आर्थिक सत्ता पूरी तरह से आ जाएगी

उसी दिन यहां की राजनीतिक गुलामी भी उसके चंगुल में इस तरह फंस जाएगी कि सभी मुंह ताकते रह जाएंगे।

विचारकों का यह तर्क सही है कि किसी स्थान को लेकर पैदा हुआ विवाद उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना महत्त्वपूर्ण यह है कि पिछले सौ-डेढ़ सौ सालों में हमने किस तरह की गलतियां की हैं जिनके कारण से देश तबाही के कगार पर पहुंच गया है। इसके लिए अगर यहां की राजनीति दोषी है तो बुद्धिजीवी भी कम दोषी नहीं हैं जिन्होंने कभी ठीक ढंग से आवाज उठाने की हिम्मत नहीं की। सांप्रदायिकता, जातीयता तथा धर्मनिरपेक्षता को उन्होंने कभी सही परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने की कोशिश भी नहीं की। सभी को यह जानना चाहिए कि किसी जमाने में सांप्रदायिकता और जातीयता आदरसूचक शब्द रहे हैं। कबीर, तुलसी और भिक्षु स्वामी आदि के अपने-अपने संप्रदाय रहे, मगर उन्होंने धार्मिक अंधविश्वासों और वितंडावाद पर जबरदस्त हमला किया। यहां तो जितने ईश्वर या उनके अवतार हुए हैं उतने ही संप्रदाय रहे हैं। तब संप्रदाय पहचान का आधार हुआ करता था।

लेकिन भ्रम की स्थिति तब बनी जब अंग्रेजों ने सांप्रदायिक शब्द का अपने निहित हितों के लिए इस्तेमाल किया और धर्मनिरपेक्षता का बोलबाला शुरू हुआ। यह एक आश्चर्य की बात है कि जिस देश के लोगों के मूल स्वभाव में ही धर्म सदैव मौजूद रहा हो, वहां धर्म से निरपेक्ष भला कोई कैसे हो सकता है, कौन हो सकता है? मगर पश्चिमी चिंतन और 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को हमारे संविधान में शामिल कर निरर्थक विवाद पैदा कर दिया गया। जबकि आज तक धर्म निरपेक्षता को सही परिप्रेक्ष्य में परिभाषित तक नहीं किया गया है। आचार्यश्री तुलसी एवं आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जैसे मानवतावादी धर्माचार्यों के द्वारा कुछ प्रयास अवश्य हुए। 'धर्मनिरपेक्षता' के स्थान पर 'पंथनिरपेक्षता' शब्द को प्रयुक्त कर देने के सुझाव भी सामने आए। किंतु उन विचारों को भी समाज में प्रभावी रूप से स्थापित करने का काम नहीं हो सका। यह कार्य हमारे बुद्धिजीवियों को प्रभावी रूप से करना ही चाहिए। राजनीतिक दुष्चक्रों और भ्रम की स्थिति को तोड़ने के लिए भी व्यापक स्तर पर कोई आगे नहीं आए। जन-साधारण को सही रास्ता दिखाने और दलीय राजनीतिज्ञों से सावधान करने की कोशिशें प्रभावी रूप से नहीं हो सकीं। बुद्धिजीवियों की निष्क्रियता या उदासीनता ने राजनीतिज्ञों का मनोबल बढ़ा दिया। इसी राजनीतिक जंजाल में वे भी शामिल हो गए जो प्रगतिशील विचारधारा के पक्षधर कहे जाते हैं। परोक्ष रूप से ऐसा लगता रहा कि उन्होंने अपनी सुरक्षा और हैसियत को जिंदा रखने की कोशिश में वही किया जो बाकी लोग कर रहे थे। गरीब-अमीर सरोकारों को छोड़कर वे भी बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक की नारेबाजी में फंस गए। उससे भी काम नहीं चला तो अमुक-अमुक जातियों के पक्ष-विपक्ष की बातें करने लगे।

क्या यह सही नहीं है कि जातिवाद तथा सांप्रदायिकता ने धन और गुंडाबल को प्रोत्साहन दिया है? अपराध और हिंसा की धारा साफ-साफ सामने बहती हुई दिखाई पड़ रही है। राजनीतिज्ञ उसके सूखने में नहीं, बल्कि उसके संरक्षण में अभिरुचि ले रहे हैं। ऐसे समय धर्मगुरुओं की जिम्मेवारी अधिक बढ़ गई है। अगर हमने अपने विचारों को अपनी संस्कृति और धर्मनीति के यथार्थ में डालकर परिभाषित नहीं किया और राजनीतिक दुश्चक्रों से मुक्ति के प्रयास बेलाग होकर नहीं किए गए तो देश, समाज और व्यक्ति को विघटन से बचाया नहीं जा सकता।

अब समय आ गया है कि हालत की गंभीरता को देखकर राजनीतिज्ञ और बुद्धिजीवी मिलकर स्पष्ट फैसला करें। यह फैसला इसलिए आवश्यक है कि देश में सामाजिक और धार्मिक शक्तियों को सकारात्मक रूप में सक्रिय होने का मौका मिल सके। इस समय बुद्धिजीवियों तथा धर्मगुरुओं को खास तौर पर खड़े होने की जरूरत है। जिनके प्रति, न करते हुए भी, आज दूसरों की तुलना में समाज में सम्मान है। लोग गंभीरता से उन्हें सुनते हैं और उनके कहे का पालन भी करते हैं। सच तो यह है कि बुद्धिजीवी और धर्मगुरु ही समाज और राजनीति के गलियारों को पवित्र कर सकते हैं। ❖

मेरे जीवन के रहस्य **पृष्ठ 28 का शेष**

संस्कृत का वक्ता कुम्हार है तो उसका भी राज्य में बड़ा स्थान है। यह सौभाग्य मानता हूं कि मुझे ऐसा धर्मसंघ मिला है, जिसमें प्रबुद्धता, विचारशीलता और चिंतनशीलता है। इतने प्रबुद्ध होते हुए भी वे अनुशासित और विनम्र हैं। यह आचार्य भिक्षु का कोई वरदान ही है कि ऐसे संस्कार पीढ़ी-दर-पीढ़ी संक्रांत होते गए। जहां एक नेतृत्व है, वहां साधुपन भी शुद्ध पलेगा, विकास होगा, प्रबुद्धता बढ़ेगी, शक्ति बढ़ेगी। जहां बिखराव होता है, वहां सारी बातें समाप्त हो जाती हैं। तेरापंथ की शक्ति का रहस्य है कि उसे एक नेतृत्व मिला है, विनीत, समर्पित और अनुशासित साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका समाज मिला है। कितना अच्छा हो, आज के धर्म के लोग भी इस सूत्र को पकड़ सकें, अपनी शक्ति का संवर्धन कर सकें। ❖

प्रस्तुतकर्ता : **मुनि धनंजयकुमार**

स्व-पर का जहां अभेद है, वहां विराट सत्ता का साक्षात्कार हो जाता है। मूर्च्छा टूट जाती है। अंतर्मन का रूपांतरण हो जाता है। आग्रह-मुक्त जीवन का यही परम यथार्थ है। भेद-रेखाएं अभावजन्य होती हैं। भेद की दीवारें टूटने पर विभाजन नहीं होता। सूर्य की किरणें अलग-अलग दिखती हैं, किंतु समान रूप से एक जैसी हैं। महावीर की चेतना में अभाव नहीं रह जाता। वे अपने-आप में संपूर्ण थे। चेतना स्व-पर के लिए नहीं होती। वह अखंड है। महावीर निज में निज की पहचान हैं। साधना और त्याग के प्रतिमान हैं। ज्ञान की मौलिक संभावना के महासूत्र हैं।

महावीर : इंसान में ईश्वरत्व

साध्वी नगीना

महावीर भारत में जन्मे। इस धरती पर हजारों साल से ऐसी ऊर्जा तरंगित होती रही है, जिसका एहसास आज भी हवाओं में कर रहे हैं। महावीर की विद्युत ऊर्जा ने तत्कालीन वातावरण को प्रभावित किया, आज भी महावीर की प्रासंगिकता निर्विवाद है।

सत्य और जीवन प्रवाही हैं। महावीर भी प्रवाही थे। न किसी से बंधे, न किसी को बांधा। वे सदा नित्य हैं। वर्तमान हैं। महावीर का जन्म मंगलाचरण है। देह साध्य के लिए साधन बन जाती है। देह सधने पर विरक्ति स्वयमेव होती है। विरक्ति के पीछे कौन-सा असंतोष था—पारिवारिक या सामाजिक? क्या गृहत्याग जिम्मेदारियों से पलायन नहीं? वर्तमान युग का प्रश्न हो सकता है। महावीर का जीवन स्वयं इसका उत्तर है।

असंतोष के तीन प्रकार हैं—पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक। पारिवारिक और सामाजिक असंतोष से व्यक्ति धार्मिक नहीं बन सकता। धार्मिक व्यक्ति के असंतोष का संबंध न परिवार, न समाज से; न संपत्ति, न शरीर से। उसका ध्येय सत्य की प्राप्ति है।

नीत्से ने कहा—'अभागा होगा वह दिन, जिस दिन आपको अपने से संतोष हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन, जिस दिन मनुष्य की आकांक्षा का तीर पृथ्वी के अतिरिक्त किन्हीं तारों की तरफ मुड़ेगा।'

महावीर पलायनवादी नहीं। उनका एक सीमा-रेखा से हटकर असीम बनने का प्रयास है। एक आंगन छोड़, आकाश का विस्तार पाना है। महावीर को जीवन के अतिरिक्त सभी अमान्य था। इसलिए अतिशय मौन की साधना थी। उपदेश, निर्देश, संदेश नहीं देते। अहिंसा रेशे-रेशे में व्यापक होने के बाद प्रवचन प्रारंभ होता है। महावीर का समवसरण सब जाति एवं सभी वर्ग के लिए आश्रय धाम था। सिंह-गाय एक साथ बैठते। सिंह के लिए गाय दर्पण है। वह गाय में अपनी छवि देखता है।

महावीर की भावमयी चेतना में विश्व की सचेतनात्मक एकता का अभिवादन है। सीमाओं-संदर्भों से परे अंतहीन मैत्री है। सब जीवों में अपना अस्तित्व देखने वाले के राग-द्वेष समाप्त हो जाते हैं। राग-द्वेष हिंसा है। क्रोध हिंसा है। ईर्ष्या हिंसा है। हिंसा का मूल है देहभाव। अहिंसा का आधार है आत्मभाव। महावीर आत्मभाव में अवस्थित हैं। इसलिए आवेग, उद्वेग, संवेग सभी शांत हैं। आधि, व्याधि, उपाधि से मुक्त हैं।

स्व-पर का जहां अभेद है, वहां विराट सत्ता का साक्षात्कार हो जाता है। मूर्च्छा टूट जाती है। अंतर्मन का रूपांतरण हो जाता है। आग्रह-मुक्त जीवन का यही परम यथार्थ है। भेद-रेखाएं अभावजन्य होती हैं। भेद की दीवारें टूटने पर विभाजन नहीं होता। सूर्य की किरणें अलग-अलग दिखती हैं, किंतु समान रूप से एक जैसी हैं। महावीर की

चेतना में अभाव नहीं रह जाता। वे अपने-आप में संपूर्ण थे। चेतना स्व-पर के लिए नहीं होती। वह अखंड है। महावीर निज में निज की पहचान हैं। साधना और त्याग के प्रतिमान हैं। ज्ञान की मौलिक संभावना के महासूत्र हैं।

महावीर ने न राम की तरह ब्रह्मास्त्र चलाए, न कृष्ण की तरह वंशीवादन किया। महावीर का जीवन सत्य को खोजने वाले मुसाफिर का खुला इतिहास है। चैतन्य जगत की महान क्रांति है। महावीर ने अपने ईश्वरत्व को इन्सान में ही ढूंढ़ा। महावीर अहिंसा और अध्यात्म की गगन चूमती ऊंचाई है। वैराग्य और समता का शास्त्र है।

महावीर का जीवन चिंतन, मनन, संयम और तपस्या का मंथन है। जीवात्मा से परमात्मा बनने की वैज्ञानिक प्रयोगशाला है। महावीर ने धर्म की अहिंसात्मक क्रांति की। धर्म को आरोपित सीमाओं के कटघरे से बाहर निकालकर प्रतिष्ठा दी।

धार्मिक बनने की प्रथम सीढ़ी है प्राणी मात्र के प्रति आत्मीय भावना का विकास। आत्मा के निगूढ़ रहस्यों को खोलने की यही प्रक्रिया है। परमाणु मात्र भी जहां राग-द्वेष है तो समस्त आगमों का अध्येता भी आत्मा को नहीं पा सकता। आत्मोपम्य भावना एवं समता का विस्तार होने पर अहिंसा स्वयंसिद्ध हो जाती है। अहिंसा का संबंध व्यक्ति की मानसिकता के साथ है।

महावीर के उपदेशों की आज भी उतनी ही उपयोगिता है जितनी पहले थी। युग बदल गए। हवाएं बदल गईं। परिस्थितियां बदल गईं। सत्ताएं बदल गईं। काल के प्रवाह में न जाने कितना-कुछ बदल गया, किंतु महावीर की वाणी और दर्शन कभी नहीं बदलेगा। सदियां उजालता रहेगा। उसमें अनेक समस्याओं के समाधान की क्षमता है।

महावीर के भक्तों ने महावीर को कितना समझा, कहा नहीं जा सकता। अनुयायी समाज की आज जो छवि है, धर्म में जिन विकृतियों ने घुसपैठ की है, उपभोक्तावादी और बाजारू संस्कृति ने जिस निर्ममता से प्रहार किया है—चिंतनीय है। जीवन में अजीब विरोधाभास चल रहा है।

एकांगी आग्रह, छोटी-छोटी बाड़ाबंदियों में मस्तिष्क की खिड़कियों को इस प्रकार फिट कर दिया है कि बाहर की शुद्ध हवा प्रवेश ही नहीं कर पाती। धर्म प्रतिपल जीने का है, उसे तस्वीरों, वंदनवारों, तोरणद्वारों, बोलियों पर चढ़ा दिया। यदि जीवन का धरातल दिया जाए तो मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक समस्याओं का सहज समाधान है।

प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था, वैज्ञानिक सापेक्षवादी चिंतन के लिए महावीर-दर्शन अपेक्षित है। मनुष्य का खुद का अपना एक धरातल है, यदि कुछ उगाना है तो उसी पर उगाना है। धर्म न कहीं धर्मस्थान में होता है, न कहीं गांव या जंगल में। वह अंतरात्मा में है। महावीर के इन क्रांतिकारी विचारों के आधार पर यह प्रतिपादित करने की अपेक्षा है कि बाह्यजगत की कल्पित शक्तियों के पूजन से नहीं, बल्कि अंतरात्मा के दर्शन और परिष्कार से ही कल्याण संभव है।

पूजा-पाठ, प्रणाम बाहरी प्रक्रिया हैं, महावीर इन सबसे परे हैं। हमारा गणित हर आस्था और विश्वास के साथ तराजू लिए होता है। ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

- आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।

●● रचनाएं 'फुल स्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।

●●● फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

उसे गुस्सा-सा आने लगा। एक किताबी आदत के चलते उसने यह सोचने की भी घृणित चेष्टा की कि सीता बैंक में जमा पैसों को बचाना चाहती है—फिर सोचा अगर सोच भी रही है तो वह क्या गलत है। फिर एक पल में उसने सोचा कैंसर फैलने लगा है—जैसे ही उसका पता चलता है वह शरीर में ही नहीं, संबंधों की जड़ तक में पहुंचने लगता है। मेरी सारी सोच किताबी है, मैं कुछ भी नहीं जानता-समझता। यह दयनीय भाव उसके मन को घेरने लगा। उसने कहा, 'तुम ठीक ही कह रही हो। मैं कल ही लोन और छुट्टी के लिए एप्लाई कर देता हूं, पर कंपनी से सहायता मुझसे मांगी नहीं जाएगी।'

कहानी

राइजिंग टु दि ऑकेश्जन

अशोक सेकसरिया

प्रकाश और सीता सारी रात जागे थे। तड़के चार बजे सीता ने एकाएक कहा, 'इतनी सारी बातें हमने कह डालीं पर कोई नतीजा नहीं निकला। अब सो जाओ, जो होगा उससे निपटा जाएगा।' उसने पत्नी की बात मान ली कि वह ठीक कह रही है, पहले से संकट का सामना करने के लिए एक मोटा-मोटी योजना बनाई जा सकती है और बनानी भी चाहिए, लेकिन वह एकदम सांगोपांग नहीं हो सकती, परिस्थितियों का पहले से पूरी तरह अनुमान करना असंभव है। इतनी मोटी-सी बात को हृदयंगम करने में सारी रात बीत गई और वह पूरी तरह हुई भी नहीं। उसने प्रेम और कृतज्ञता के अतिरेक में सीता से कहा, 'तुम सो जाओ, सुबह मैं उठाऊं तभी उठना।' बगल में विवेक सो रहा था। रात दो या तीन बजे वह एक बार उठा तो यह कहकर कि तुम लोग अभी भी बात किए जा रहे हो, फिर सो गया। उसने विवेक को देखा, उसका मन उदास हो आया—वह उसकी और सीता की चिंता को तनिक भी महसूस नहीं कर सकता। उसने खुद कब अपने पिता की चिंता को समझा था? विचित्र है सब! यह जगत उसकी समझ से परे है। आत्मदया के ज्वार को रोकने के लिए उसने आंखें मूंद लीं और खयालों को भटकाने की कोशिश करने लगा। नींद आई नहीं, सीता को भी आई कि नहीं, वह नहीं जानता था क्योंकि वह सोई हुई दीख जरूर रही थी पर यह संभव था कि वह फिर बात न करने लगे, सोचकर सोने का बहाना कर रही हो। बात और बात, तिल का ताड़, यही तो उसके जीवन का मर्म या कहानी है।

कल अगर बायोप्सी में उसे कैंसर निकला तो मोटा-मोटी जो योजना सोची है वह कितनी कारगर होगी? कैंसर कितने दिन खिंचेगा? हर बात अस्फुट डर के साथ आती और वह कोई कूल-किनारा नहीं पाता। एक प्रकार के धुंधलके में वह लेटा रहा। निद्रा और जागृति की वयःसंधि में उसने गली में किसी मोटर के घुसने की आवाज सुनी और जब ड्राइवर ने गली की गरीबी के प्रति अपनी हिकारत जाहिर करते हुए जोरों से हॉर्न बजाया तो वह गुस्से में बिस्तर से उठा—ड्राइवर से कहेगा कि उसने अपने को क्या समझ रखा है? ड्राइवर ने गाड़ी खड़ी कर दी थी और किसी का पता पूछ रहा था। उसने सोचा कि ड्राइवर भटक गया है। बगल की चौड़ी सड़क पर जो बहुमंजिला इमारत बनी है उसी के किसी फ्लैट को ढूंढ़ते हुए उसकी गली में गाड़ी ले आया है। घर से सुबह-सुबह निकलकर ड्राइवर को फटकार सुनाते हुए उसे एकाएक एहसास हुआ—यह फटकार कहीं उसकी युवावस्था की सिसकती आवाज थी। उसमें वह तीव्रता और आवेग न था, जो गरीब को आदमी न मानने पर उन दिनों उसे शायद होता

था। उसने गाड़ी देखी मरसिडीज बेंज थी। मरसिडीज बेंज देखकर उसे सहसा खयाल आया कि बहुमंजिला इमारत में मल्टीनैशनल कंपनी में काम करने वाली एक लड़की ने फ्लैट लिया है। इस लड़की को वह रोज जब दफ्तर जाते देखता तो तय नहीं कर पाता था कि वह सुंदर है या फैशनेबल। सब-कुछ विज्ञापनों के मॉडल की तरह दिखने वाली इस लड़की ने उसकी सुंदरता की धारणा को पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर दिया था। सुंदरता क्या सिर्फ कुछ नुस्खों के मुताबिक एक आकर्षक छवि पेश कर उत्तेजना पैदा करना है या कुछ और? यह लड़की कालिमा-सी उसके मन में बस गई थी और जब-तब उसका उसे खयाल आता तो आश्वस्ति का बोध होता। उसने सोचा मरसिडीज बेंज गाड़ी उसी के यहां आई होगी।

पांच-दस मिनट बाद ही उसके दरवाजे पर दस्तक हुई। दस्तक तेज थी। उसने दरवाजा खोला तो सामने ड्राइवर को खड़ा पाया। उसने रूखे स्वर में पूछा, 'अब क्या काम है।' ड्राइवर एक बार सकपका गया। पर उसे पूरा भरोसा था कि यह बताने पर कि वह कहां से आया है, उसका स्वागत ही होगा।

'आपका ही नाम प्रकाशचंद्र है?'

'हां, मेरा ही नाम है।'

'रमेश बाबू ने आप को तुरंत बुलाया है। बहुत जरूरी काम है। वह मरसिडीज गाड़ी किसी को अरजेंट बुलाना हो, तभी भेजते हैं।'

'किस तरह का काम?' उसने थोड़ा मुंह बनाते हुए पूछा।

'यह तो हमें पता नहीं, पर आपको पंद्रह मिनट में पहुंचना है।'

'पंद्रह मिनट तो मुझे तैयार होने में लगेंगे।'

यह उसने झट कह तो दिया लेकिन उसे खुद पर झुंझलाहट-सी हुई कि वह एक ऐसे आदमी पर नाहक रोब गालिब करने की कोशिश कर रहा है, जिसका जीवत्व शायद मालिक के आगे दुम हिलाने, गली में भौंकने और अपने मालिक की आया-दाइयों पर चढ़ने तक रह गया है। आवाज सुनकर सीता उठ गई और उसे तैयार होते देखकर कहने लगी, 'कहां जा रहे हो?' उसने कहा, 'पता नहीं, रमेश खेतान ने इतनी सुबह क्यों बुला भेजा है? मुझे तो यह खयाल भी नहीं था कि उसके पास मेरा पता होगा।' सीता ने कहा, 'कोई जरूरी बात होगी।'

गाड़ी में वह ड्राइवर के साथ सीट पर बैठा। ड्राइवर ने जब पीछे की सीट का दरवाजा खोलने की तथाकथित सभ्यता नहीं बरती तो उसके मन में आया कि वह पीछे की सीट पर बैठकर ड्राइवर को अपनी औकात बताए, पर ड्राइवर तो उसके कमरे को देखकर ही उसकी औकात जान गया था। उसका दिमाग दौड़ने लगा। हर बात का तिल से ताड़ बनाने की अपनी आदत का एहसास होने के साथ-साथ मन में ताड़ बनता ही रहा। सामाजिक दृष्टि से अपने को हेय मानने वाले व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करना वह कर्तव्य मानता था और यथाशक्ति उसका पालन करने की कोशिश भी करता था लेकिन इस वक्त ड्राइवर के साथ की सीट पर बैठने में वह कर्तव्य की भावना नहीं थी। एक निर्वीर्य गुस्सा था कि आदमी कितना गलित हो जाता है कि जिसे ताकतवर समझता है उसके सामने तो दुम हिलाता है और जिसे ताकतवर नहीं, उससे सहज व्यवहार भी नहीं करता।

वह कभी मरसिडीज बेंज में नहीं बैठा था और न उसके मन में ऐसी कोई वासना ही थी, लेकिन उसे एकाएक याद आया कि एक दिन रमेश खेतान ने कॉलेज के दिनो में उससे पूछा था, 'अगर तुम्हें मरसिडीज बेंज मोटरकार और सुंदर लड़की में से किसी एक को चुनना हो, तो किसे चुनोगे?' उसने जवाब में कहा था, 'मुझे दोनों ही नहीं मिलने वाली इसलिए चुनने की बात बेमतलब है।' तो रमेश खेतान ने कहा कि वह एक मरसिडीज ही चुनेगा। रमेश खेतान की पत्नी को उसने दो बार देखा था, देखे हुए भी दस वर्ष बीत गए होंगे। वह तब निश्चय ही अपूर्व सुंदरी थी, अब भी होगी। रमेश खेतान को चुनने की नौबत नहीं आई। उसे दोनों ही मिल गईं, उसने थोड़े आनंद और व्यंग्य से सोचा।

ड्राइवर से बात करने की उसके मन में जो भी इच्छा होती, वह रात की अनिद्रा, सुबह के हादसे और उसकी तथाकथित असभ्यता के बाद हुई ही नहीं। उसने यह खोदकर जानने की कोशिश भी नहीं की कि इतनी सुबह उससे क्या काम हो सकता है? उसके मित्रों और परिचितों में रमेश खेतान सबसे ज्यादा धनी था। जब भी कॉलेज के किसी पुराने मित्र से मुलाकात हो जाती तो रमेश खेतान की चर्चा जरूर होती—धनी का कितना दबदबा होता है, इसका एहसास उसे इस तरह की चर्चा में हमेशा होता और झूठ क्यों बोलें, क्या उसने खुद कभी यह नहीं सोचा कि अगर किसी भयानक मुसीबत में पड़ा और बीस-पचीस हजार रुपयों की जरूरत पड़ी तो रमेश से ले सकता है और नौकरी छूटने पर उसके यहां काम भी कर सकता है। रमेश खेतान उसका दोस्त या परिचित है, यह कितना तसल्लीबख्श खयाल है, वह अच्छी तरह जानता था।

रमेश ने इतनी सुबह क्यों बुलाया होगा—क्या उसे कोई नौकरी देना चाहता है? नहीं, ऐसी कोई बात नहीं होगी।

कारण कुछ ऐसा होगा जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। कुछ मामलों में उसका अनुमान सही निकलता था तो मन में एक प्रकार का आह्लाद-सा होता था, कहीं अपने को ब्रह्मज्ञानी मानने का अस्फुट दर्प पैदा होने लगता। पर कुछ में वह जो अनुमान लगाता था उसका सच से किसी प्रकार का वास्ता नहीं होता, तब उसे लगता कि वह दुनिया को बिल्कुल ही नहीं समझता, एकदम बुड़बक है। वह इतना जान गया कि रमेश के बुलाने के कारण का वह पता नहीं लगा सकता। सात-आठ मिनट में गाड़ी रमेश के बंगले में पहुंच गई।

ड्राइवर ने गाड़ी एकदम पोर्टिको में लगाई तो उसे लगा सचमुच ही किसी बहुत जरूरी काम के चलते उसे बुलाया गया है। बहुत बड़े हॉल को पार करवाकर किसी नौकर ने उसे रमेश के पास पहुंचाया। वह सोफे पर अधलेटा पड़ा था। टेलीफोन सिरहाने रखा था। सारा-का-सारा किसी फिल्मी दृश्य सरीखा था। उसे आया देखकर रमेश ने बड़ी राहत महसूस की और कहा, 'मैंने तो सोचा था तुम्हारा घर ड्राइवर को मिलेगा भी कि नहीं। रात तीन बजे चार डायरियों में ढूंढ़ कर तुम्हारे घर का पता लगाया। रात दस बजे कविता का फोन आया था : टुनटुन का परसों स्कूल में दाखिला करवाना है। और अब तक हमने उसका कोई नाम नहीं तय किया है। तुम 'प' पर कोई नाम सोचकर मुझे बारह बजे तक फोन करो। मैं सोचता रहा पर मुझे कोई नाम नहीं सूझा। बारह बजे मैंने कविता को फोन किया कि सुबह दस बजे तक बताऊंगा। वह आज शाम को मुंबई से आएगी। रात-भर यही खयाल आता रहा कि तुमसे किसी तरह कंटैक्ट हो। तुम हिंदी के जानकार हो, कोई अच्छा नाम सुझा सकोगे। नाम 'प' पर रखना है। बैठो, दस-पंद्रह मिनट में कोई अच्छा-सा नाम सोच डालो।' नौकर को चाय लाने को कह वह बाथरूम में घुस गया। टुनटुन कौन है, यह रमेश ने नहीं बताया। अनुमान से उसने जाना रमेश का बेटा होगा। उसने एक पल सोचा कि धनिकों की बातों में संदर्भ नहीं होते, व्यक्तियों के परिचय नहीं होते, उन्हें अनुमान से जानना पड़ता है। लेकिन 'प' पर नाम सोचने के बजाए उसे कॉलेज के दिनों की याद आने लगी। कॉलेज में उसने दो-तीन लड़कों के साथ मिलकर हिंदी की एक पत्रिका निकाली थी। उत्साह में निकालने का निश्चय तो कर लिया पर कागज और छपाई का खर्च नहीं जुटा पाया तो उसने हिम्मत कर रमेश से पैसे मांगे थे कि वह क्लास का सबसे धनी हिंदी-भाषी छात्र है। रमेश ने तपाक से पैसे दे दिए तो कृतज्ञता से अभिभूत हो उसने रमेश के नाम से पत्रिका में एक लेख भी लिख दिया जिसे देखकर रमेश बहुत खुश हुआ था। सारी बातें एकाएक उसके दिमाग में कौंध गईं। वह रमेश के कमरे को देखता रहा। खिड़कियों पर मोटे-मोटे परदे लटके हुए थे, एयरकंडीशन मशीन चल रही थी। सब-कुछ, जिसे आरामदेह कहा जाता है, वह था लेकिन पता नहीं उसे एकाएक लगा था कि इससे तो उसका अपना कमरा ही भला, बहुत भला। विशाल कमरा, मोटे परदे, दो-दो एयरकंडीशन मशीनें—सब उसे होटली, दमघोंटू और प्रदूषण फैलाते लगे। चाय आई। प्याले देखकर उसे लगा कि नहीं, सब असुंदर नहीं है—सुंदर प्यालों में चाय पीने की उसकी वासना अभी मिटी नहीं है। चाय अच्छी थी या बुरी, वह कोई अंदाज नहीं लगा पाया। रात-भर की अनिद्रा के बाद चाय ने निश्चय ही उसके शरीर में कुछ स्फूर्ति का संचार किया होगा—उसने एक चिट पर 'प' से सात-आठ नाम लिख डाले। अचानक उसके दिमाग में कौन-सी भयानक विकृति आई कि उसने अंतिम नाम 'प्रदूषण' लिखा। रमेश बाथरूम से निकला तो उसने झट से 'प्रदूषण' काट दिया और उसको अपने बालप्वाइंट से रंगने लगा। रमेश ने पूछा, 'कुछ सोचा' तो उसने रमेश को चिट बढ़ा दी। रमेश ने कहा, 'मुझ से तो अब हिंदी की लिखावट पढ़ी नहीं जाती। एकदम आदत छूट गई है और तुम्हारी लिखावट भी साफ नहीं है। तुम्हीं पढ़कर सुना दो।' उसने सुनाना शुरू किया, 'प्रबोध, प्रत्यूष, पीयूष, प्रवीण, पार्थसारथी, प्रमोद...।' रमेश प्रत्येक का अर्थ भी पूछता जाता। जब उसने पीयूष का अर्थ बताया तो उसके चेहरे पर संतोष का भाव-सा आया। उसने कहा, 'कविता के पिता का नाम अमृतलाल है। यह नाम बेचा जा सकता है।' वह कुछ समझ नहीं पाया। 'बेचा जा सकता है' का क्या मतलब? पांच-दस पल वह हतप्रभ-सा रहा और रमेश से पूछने को हुआ कि उसका आशय क्या है तभी उसे अंग्रेजी की 'सेलिंग द आइडिया' वाली उक्ति याद आई और अचानक यह भी जोरों से याद आया कि बीस वर्ष पहले किसी अमेरिकी पुस्तक में उसने किसी लेखक के परिचय में पत्रिकाओं को कहानी 'सेल' करने की बात पढ़ी थी तो उसे उस वक्त उसका कोई अर्थ समझ में नहीं आया था। कहानी भी बेची जाती है, यह वह तब नहीं जानता था। एक पल में वह समझ गया और उसने रमेश से कहा, 'भाभी को निश्चय ही यह नाम 'क्लिक' (एकबारगी पसंद या जम जाएगा) करेगा।' रमेश ने खुशी में अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया तो उसने हाथ मिलाया। एक पुराने मित्र से पांच-सात वर्ष बाद मिलना और हाथ मिलाना एक सहज क्रिया है पर उसे कहीं यह बड़ा अश्लील-सा लगा। अश्लीलता के अपने एहसास से वह थोड़ा प्रसन्न ही हुआ कि सभ्यता और शालीनता के उसकी युवावस्था के मानदंड एकदम नष्ट नहीं हो गए हैं। एक चरम अश्लीलता में उसने सोचा कि रमेश और उसकी उमर समान ही होगी। इस उमर में उसके दो-ढाई वर्ष का बेटा है

इसका मतलब यह है कि उसके निश्चय ही तीन-चार बेटियां होंगी। एक बार अपने अनुमान को परखने की उसमें अदम्य इच्छा हुई पर उसने सोचा इस तरह के सत्य को जानकर वह क्या हासिल करेगा—केवल यही न कि दुनिया कितनी ओछी है। लड़के-लड़कियों में कितना भेदभाव करती है। लेकिन युवावस्था में लेखक बनने की अपनी आकांक्षा के कारण वह कुछ आदतों का गुलाम बन गया था—आत्मनिरीक्षण एक लेखक के लिए अनिवार्य है, ऐसा उसने पता नहीं कैसे और कब और कहां पढ़कर मन में बैठा लिया था। उसने अपनी आदत चालू कर डाली तो उसे लगा कि अगर उसके खुद विवेक की जगह लड़की होती तो क्या वह सीता को और बच्चे न होने देने के लिए राजी कर पाता या खुद ही संतुष्ट हो पाता। 'जज नॉट' (दूसरों के बारे में कोई अनुदार निर्णय न करो) उसने मन-ही-मन दुहराया और चेहरे पर प्रसन्नता का भाव लाते हुए कहा, 'बड़ी अच्छी मुलाकात हुई। अगर भाभी को 'पीयूष' नाम भा गया तो मेरा आना धन्य होगा।'

धन्य शब्द उसने अपनी जबान पर रोकना चाहा था। रमेश एक ऐसे संसार का बाशिंदा था जहां शब्दों की ध्वनियां नहीं होतीं; वे नाम होते हैं और सो भी अश्लील सूचनाओं के। रमेश 'धन्य' के प्रयोग को चापलूसी मान सकता है तो माने पर उसकी जबान पर वह आया तो उसे रोकना कहां की बहादुरी है, उसने सोचा। रमेश के हावभाव से उसे लगा कि काम पूरा हो गया है और उसे जाना चाहिए। पैसे वाले कभी मित्र नहीं हो सकते; काम निकला कि छुट्टी। जिंदगी मानो मुहावरों के मुताबिक चलती है। एकबारगी उसे एक स्वार्थ-भरा खयाल आया कि रमेश को बताए कि उसकी बायोप्सी की रिपोर्ट आज शाम ही आने वाली है। पर उसने बताया नहीं और अपने न बताने पर मन-ही-मन अति प्रसन्न हुआ।

लौटते वक्त मरसिडीज नहीं दिखी। एक हिंदुस्तानी अंबेसडर खड़ी थी, वह उसे घर पहुंचा आई। यह ड्राइवर की कारस्तानी थी या मारवाड़ी उद्योगपतियों का नियम, वह तय नहीं कर पाया। सीता ने पूछा, क्या बात थी तो उसने बिना किसी टिप्पणी के समाचार की तरह सारी बात बता डाली। वह हंसी, 'तो इतनी सुबह अरबपति मित्र ने इसलिए याद किया था!' वह कुछ बोला नहीं। उसने अपना सिर सीता के वक्ष पर डाल दिया और वह उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। विवेक बैठा था तो उसने उससे कहा, 'तुम्हारी मां के दो बेटे हैं, नंबर एक तुम और नंबर दो मैं।' विवेक ने कुछ कहा नहीं। बस, उसने एक पल भरपूर उसे देखा—उस दृष्टि में क्या था, यह जानना उसके बूते के परे था। क्या उसकी कातरता के प्रति तिरस्कार था? जीवन-भर वह घबराए बच्चे-सा मां के वक्ष में सांत्वना ढूंढ़ता रहेगा—यही उसकी नियति है। अपार आत्मदया और धिक्कार का ज्वार आया—चालीस का होने को आया पर रह गया एकदम बच्चा।

शाम बायोप्सी की रिपोर्ट आई। कैंसर निकला। डॉक्टर ने सारी रिपोर्ट देखने के बाद कहा, चिंता की कोई बात नहीं। तरह-तरह के कैंसर होते हैं आपका कैंसर तो एकदम क्युअरेबल (पूरी तरह ठीक होने वाला) है। बस, तीन-चार महीने आपका खर्च कुछ बढ़ जाएगा। उसने डॉक्टर से कहा कि वह परिवार का एकमात्र पालनहार है। उसकी पत्नी पढ़ी-लिखी है पर उसने उसे कभी नौकरी नहीं करने दी, वह स्वीकार करता है कि वह पोंगा है। अपने को पोंगा कहकर उसने डॉक्टर को पसीजवाना चाहा था कि वह उसे सच-सच बताए क्योंकि यदि उसे एक-दो वर्ष में मरना है तो पत्नी की नौकरी लगाने की तथा कई दूसरी व्यवस्थाएं उसे करनी होंगी। डॉक्टर ने निर्विकार भाव से किसी मैनेजर की तरह कहा, 'पत्नी को नौकरी लगाने की बात आपके अपने निर्णय की बात है। पर आपको जिस तरह का कैंसर है उसमें आप तीसियों वर्ष जीएंगे और उसके लिए आपकी पत्नी का नौकरी करना जरूरी नहीं। साल-छह महीने में बस, चेक-अप कराते रहिएगा। अगले सप्ताह मामूली ऑपरेशन करना होगा।' डॉक्टर से ऑपरेशन की तारीख तय कर जब वह निकला तो उसका मन कहीं प्रमुदित था। प्रमुदित होने में शायद कहीं अवसाद की 'घनीभूत पीड़ा' रही होगी। खयालों की एक जबरदस्त घुड़दौड़ उसके दिमाग में होने लगी—एक पल खयाल आया कि सोलजेनित्सिन को मरणांतक कैंसर बताया गया था और बताए जाने के बाद भी तीस-चालीस वर्ष तक वह किस जीवट से लिखता रहा है और शायद अब भी लिख सकता है। दूसरा खयाल यह आया कि सीता को पांच-छह महीने, एक वर्ष के भीतर कोई नौकरी मिल ही जाएगी। प्राविडेंट फंड के रुपये और ग्रेच्युटी को फिक्स्ड डिपॉजिट में कर देने से जीवन निर्वाह लायक एक तरह का खर्च निकल ही आएगा। उसे क्या चिंता पड़ी है। यह कैंसर तो वरदान साबित हो सकता है—सोलजेनित्सिन की ही किसी किताब में उसने एक रूसी कहावत पढ़ी थी, विपत्ति या विपदा से लाभ उठाया जाता है या लाभ प्रदान करने के लिए ही विपत्ति या विपदा आती है। उसको अपने ऊपर आश्चर्य-सा हुआ—उसके जैसा डरपोक, बात-बात में घबराने वाला आदमी कैसे कैंसर होने की बात से भय के अतल में नहीं पहुंचा! उसे याद आया कि मृत्यु से न डरने की उसको चौथी कक्षा से आदत डालनी चाहिए थी—तेज दौड़ती हुई मोटरों के आगे से गुजर जा

कर। लेकिन इसके साथ वह हमेशा कोई इच्छा भी जोड़ लेता था—यदि वह कुचला नहीं गया तो उसका फलां काम या उसकी फलां इच्छा पूरी होगी। आज उसके मन में सचमुच डर नहीं था। घर पहुंचते-पहुंचते भी डर लौटा नहीं पर अवसाद घिर आया। पता नहीं, सीता को कैसा लगेगा? कहीं वह दुख में डूब गई तो! मन-प्राण से उसने सीता को चाहा था। जैसे ही वह उसके प्रतिकूल कोई बात कहती, वह दुख में डूब जाता। एक असंभव कल्पना उसके मन में प्रेम के बारे में थी कि प्रेमियों का मन एकदम एक होता है। कभी-कभी उसे यह बात किसी भयानक यातना-सी लगती कि वह कभी भी यह नहीं जान सकता कि सीता के मन में क्या हो रहा है। उसकी दृष्टि में आदमी का सबसे बड़ा दुख शायद दूसरे के मन को जान नहीं पाना था। सीता डरेगी भी तो डर प्रकट नहीं करेगी, और वह कभी नहीं जानेगा कि वह क्या सोचती है। सीता को कैसे सारी बात बताएगा? यह अद्भुत था कि वह सीता के साथ बैठा भी सीता के बारे में इस तरह सोचता रहता जैसे वह उपस्थित हो ही नहीं। दफ्तर जाते, वहां से लौटते और दफ्तर में न जाने वह सीता से कहने के लिए क्या-क्या सोचा नहीं करता और जब वह उपस्थित रहती तो लगता कि कहकर कुछ नहीं होगा। अपनी सारी बातें उसे अस्पष्ट, हवाई और निरर्थक लगने लगतीं। विवेक के बारे में उसके खयाल अलबत्ता ठोस होते—बड़ा होकर वह क्या करेगा, कैसा काम मिलेगा, कैसा चरित्र होगा। सीता जब प्रसव में भयानक पीड़ा पा रही थी तब उसने न जाने कितनी दफे सोचा होगा कि स्त्री क्यों इतना कष्ट झेलकर भी मां बनना चाहती है और वह कम-से-कम आगे कभी संतान पैदा नहीं करेगा। विवेक से काम लेगा और इसीलिए बेटे का नाम विवेक रखा था।

उसने सीता को सारी बातें बिना किसी भय और आवेग के बतानी शुरू कीं तो सीता ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया और फिर गले की छोटी-सी गांठ को सहलाने लगी। उसने थोड़े मजाक में कहा, 'कोई खास बात नहीं है सिर्फ इस सप्ताह चार-पांच हजार रुपयों का इंतजाम करना पड़ेगा, अस्पताल में दो-तीन दिन रखने के बाद छुट्टी दे देंगे। बैंक में आठ-नौ हजार रुपये पड़े हैं। कल तुम दोपहरी जा कर किसी समय ले आना।' सीता ने कहा, 'बैंक से उठाने की क्या जरूरत है तुम ऑफिस से लोन क्यों नहीं मांगते? शायद ऑफिस वाले सहायता के बतौर ही ऑपरेशन का पूरा रुपया दे दें।' एक पल उसे बहुत बुरा लगा और वह तत्काल बोल उठा, 'कितनी हल्की बात करती हो, मैं ऑफिस से सहायता मांगूं?'

'इसमें क्या हल्कापन है! क्या तुम्हारी कंपनी ने तुम्हारा शोषण नहीं किया है! बहुत-सी कंपनियां तो कर्मचारियों के पूरे इलाज का खर्च उठाती हैं।'

'मैं जिस कंपनी में काम करता हूं, वह नहीं उठाती।'

'फिर भी कोशिश करने में क्या बुराई है?'

उसे गुस्सा-सा आने लगा। एक किताबी आदत के चलते उसने यह सोचने की भी घृणित चेष्टा की कि सीता बैंक में जमा पैसों को बचाना चाहती है—फिर सोचा अगर सोच भी रही है तो वह क्या गलत है। फिर एक पल में उसने सोचा कैंसर फैलने लगा है—जैसे ही उसका पता चलता है वह शरीर में ही नहीं, संबंधों की जड़ तक में पहुंचने लगता है। मेरी सारी सोच किताबी है, मैं कुछ भी नहीं जानता-समझता। यह दयनीय भाव उसके मन को घेरने लगा। उसने कहा, 'तुम ठीक ही कह रही हो। मैं कल ही लोन और छुट्टी के लिए एप्लाई कर देता हूं, पर कंपनी से सहायता मुझसे मांगी नहीं जाएगी।'

'तुम कभी कुछ नहीं समझोगे, हमेशा झूठी प्रतिष्ठा और महान बनने में लगे रहोगे। कंपनी क्या कोई अपनी तिजोरी से तुम्हें रुपये देगी!'

वह कुछ भी नहीं बोला। शोषण शब्द से उसे भारी चिढ़ थी। कंपनी उसका शोषण करती है, यह बात उसे कभी स्वीकार नहीं हुई। वह जितना काम करता था उससे दस गुना अधिक काम करने वाले उससे दुगुना-तिगुना कम वेतन पाते थे। शोषण जिनका होता है उनको तो इस शब्द का पता भी नहीं और उनके लिए इसके इस्तेमाल का चलन भी उठ गया है। वह तो कंपनी का एक एजेंट है जो कंपनी को लोगों को मूर्ख बनाकर मुनाफा कमाने देने में सहयोगी है और यदि कंपनी शोषक है तो कहीं वह भी है। यह जिंदगी भी क्या है जिसमें निरर्थक और ठगने के काम में शामिल होकर जीविका चलती है, उसने उदासी में सोचा और फिर किताबी ढंग से कि यह कहीं श्मशानी-वैराग्य तो नहीं? वह शायद कैंसर की बात से बहुत डर गया है और डर खुलकर प्रकट होने के बजाय इस तरह की बातों में आ-आकर छलक रहा है। उसने सीता की हथेली को मजबूती से पकड़ लिया और एकाएक उसके हाथों की रेखाएं देखने लगा। न जाने कितनी रेखाएं मिट गई होंगी। उसने मजाक करने की चेष्टा करते हुए कहा कि तुम्हारे भाग्य में तो सधवा होकर मरना लिखा है और मेरे में विधुर, सो निश्चिंत रहो। सीता एक पल हंसी तो उसे लगा कि उसका उपहास कर रही है। रात होते-होते कैंसर की छाया घनी होने लगी। सीता की अन्यमनस्कता ने उसे परेशान-सा कर डाला। पूछा, 'खाना

बनाओगी?' तो बोली, 'बाजार से ब्रेड ले आओ, सब्जी बना देती हूं, रोटी मुझसे नहीं बनेगी।'

वह कातर हो आया और उसने एकदम तफसील से सीता को समझाना शुरू किया कि कहीं कोई ख़तरे और डर की बात नहीं है। लेकिन उसने यह भी जाना कि जैसे वह सीता की हर बात पर विश्वास नहीं करता वैसे ही सीता भी कभी नहीं करती होगी। फिर किताबी बगूला उठा—यह डर भी गुजर जाएगा जैसे सब गुजर जाते हैं। फिर उसने मन-ही-मन तुक मिलाने की कोशिश की कि जैसे सब मर जाते हैं।

दो दिनों में जीवन सामान्य गति पर लौट आया। कंपनी ने तुरंत लोन मंजूर कर दिया। कुछ लोगों ने चिंता भी प्रकट की। ऑपरेशन होने से पहले का समय पहाड़-सा लगने लगा था। जल्दी-से-जल्दी ऑपरेशन हो तो एक प्रकार की अस्थिरता से छुट्टी मिले। रात नींद आती तो उखड़ी-उखड़ी। छह-सात बार पेशाब करने उठता तो लगता कि वह बहुत डर गया है क्योंकि बार-बार पेशाब का होना डर का ही तो सूचक है। शायद जब वह जागता रहता तब सीता सोई रहती और जब वह जगी रहती तब उसे नींद आ गई होती हो। बीच-बीच में सीता उठकर उसे जगा भी देती और एक दिन तो उसने कहा, 'तुम बिल्कुल घबराओ मत। यदि मर भी गए तो निश्चिंत मरना। मैं और विवेक अच्छी तरह जी लेंगे।' ऐसे में उसके भीतर झंझावात-सा उठता और वह यह भी जानता कि वह डर नहीं रहा है। अनिश्चितता और उत्तेजना झंझावात पैदा कर रही है।

ऑपरेशन को दो ही दिन रह गए थे। कल शाम उसे अस्पताल में दाखिल होना था। सीता सुबह उठते ही फुर्ती से उसके कपड़े निकालने लगी। मानो वह कल भूल जाएगी। सात बज रहे होंगे कि वही ड्राइवर दस्तक देता हुआ आया, 'रमेश बाबू ने अभी बुलाया है।' उसकी इच्छा हुई कि कह दे कि कल उसका ऑपरेशन होने वाला है, वह आ नहीं सकता। लेकिन वह भयानक रूप से ऊब रहा था और दफ्तर जाने में ढाई घंटे की देर थी—ढाई घंटे पहाड़ सरीखे लग रहे थे सो उसने सोचा थोड़ी ऊब तो मिटेगी और वह कपड़े बदलने लगा। 'पीयूष' का हश्र जानने की इच्छा होनी चाहिए थी पर रमेश खेतान उसके दिमाग से एकदम बाहर हो गया था—अचानक वह मित्र या परिचित होने के बजाय एक ऐसा उदीयमान उद्योगपति बन गया था जिसके साथ अपने संबंध बताकर कोई कमतर उद्योगपति धन्य महसूस करता है।

बंगले पर पहुंचा तो देखा लॉन में घास पर रमेश और उसकी पत्नी नयनाभिराम कुर्सियां डाले बैठे हुए हैं—चाय शायद पी चुके थे। उसे देखते ही रमेश ने कहा, 'तुमने तो कमाल कर दिया। कविता को तो नाम पसंद आया ही। पीयूष के स्कूल की मिस्ट्रेस तो नाम पर फिदा हो गई—कहने लगी कि इसमें 'पायस' का टोन है तो मैंने कहा कि मीनिंग (अर्थ) कुछ-कुछ मिलता है—अमृत पवित्र और धार्मिक ही तो होता है न! वह चुपचाप सुनता रहा। रमेश ने कविता से परिचय करवाने का उपक्रम किया तो उसने कहा, 'हम दस-ग्यारह वर्ष पहले मिले थे। आपको शायद याद नहीं।' कविता ने उसकी ओर एक बार देखा और फिर कहा, 'आपने बहुत अच्छा नाम सुझाया, थैंक्यू वेरी मच।' उसने सोचा उसके कपड़े और निस्तेज चेहरे को देख कर कविता को निश्चय ही खीझ हुई होगी कि कोई हिंदी वाला है और उसने झट से निर्णय कर डाला होगा कि इस व्यक्ति में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं ली जा सकती। एक-दो मिनट बैठकर वह चली गई तो उसने प्रतिहिंसा में सोचा कि अगर वह थोड़ी-सी भी सभ्य होती तो पीयूष को बुलाती और प्रणाम करने को कहती कि इन्होंने तुम्हारा नामकरण किया है। कविता का तुरंत चले जाना उसे बेहद अपमानजनक लगा। लेकिन रमेश ने कुछ भी नहीं ताड़ा। कविता के जाते ही वह उत्साह में आकर कहने लगा, 'तुम्हें मैंने इतनी सुबह इसलिए बुलाया था कि तुम्हारी टैलेंट (प्रतिभा) का अच्छे-से-अच्छा उपयोग हो। जानते हो पीयूष की मिस्ट्रेस ने क्या कहा, वह पीयूष नाम पर इतनी फिदा हुई कि बोली जिसने यह नाम सुझाया है, 'ही मस्ट बी ए जीनियस।' रमेश की बात पर वह हंसा और उसने कहा, 'मिस्ट्रेस ने यही समझकर कहा होगा कि नाम तुमने रखा होगा (तुम्हारे धन कहते-कहते वह रुक गया) और तुम्हारे सुंदर चेहरे को देखकर ऐसा कहना स्वाभाविक भी था।' रमेश को सुनकर अच्छा ही लगा, 'मजाक की बात छोड़ो। मैं तुम्हें एक ऑफर दे रहा हूं, तुम मेरे यहां काम करने लगो। हम जल्द ही कुछ नए कंज्यूमर प्रॉडक्ट्स बाजार में छोड़ने वाले हैं। उनके विज्ञापन के लिए एजेंसियों से बातचीत भी चल रही है, पर हमारे एंड (सिरे या तरफ) पर कोई क्रिएटिव (सृजनात्मक) इमेजिनेटिव (रचनाशील) आदमी होना चाहिए जो पीयूष और पायस के बीच कोऑरडिनेट (तालमेल) कर सके—हिंदी के ऐसे शब्द सुझा सके, जिनमें अंग्रेजी का मजा भी आ जाए। सोने में सुहागा जैसा कुछ हो। तुम्हें अभी कितना मिल रहा है?'

'क्या करोगे जानकर?'

'मैं जानना चाहता हूं और यह भी चाहता हूं कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति के टैलेंट का उपयोग हो। इसमें मैं तुम्हारा मददगार हो सकता हूं।'

उसे रमेश की बातों से थोड़ा अचरज हुआ। कॉलेज में यह लड़का कितना भोला मालूम पड़ता था, पर अब? भोला वह शायद अब भी था कि वह सोच रहा था कि 'पीयूष' और 'पायस' का संबंध उसे करोड़ों की कमाई करवा देगा। नहीं, कहीं वह खुद ही तो गलत नहीं सोच रहा। शायद इस तरह के संबंध से करोड़ों की कमाई होती हो। उसने रमेश के सवाल का जवाब नहीं दिया तो रमेश ने लगभग डपटकर कहा, 'तुम ने बताया नहीं।' रमेश की डपट से वह तनिक भी आतंकित नहीं हुआ और उसने कहा, 'तुम जानना चाहते हो तो बता दूं। मुझे लगभग तीन हजार मिलते हैं।'

'तुम्हें मैं कल से आठ हजार दूंगा। तुम आज ही इस्तीफा देकर कल से ज्वाइन कर लो—मेरा मतलब यह है कि तुम जल्द-से-जल्द ज्वाइन कर लो। एडवांस नोटिस देना हो तो दे दो। यदि तुम्हें तुरंत रिलीव नहीं करते तो आई एम रेडी टु वेट (मैं प्रतीक्षा करने को तैयार हूं)।'

वह एकदम खामोश रहा। उसे लगा कि उसके सामने कोई नाटक हो रहा है जिसमें उसे जबरदस्ती पात्र बना दिया गया है। जब बना ही दिया गया है तो उसे अपनी भूमिका खुद तय करनी चाहिए। एक बार उसने नाटकीय मुद्रा में आकाश को देखा। एक प्रार्थना-सी उसके अंतर में एक पसंदीदा कविता की अपनी मन मुताबिक बनाई हुई कुछ पंक्तियां उभरकर आईं—'हे प्रभु, तुम मुझे इतना तो बल दो कि अपनी बात तुतलाते हुए न कहूं, स्पष्टता से कहूं, जो कहूं, सचाई के साथ, निष्ठा और संयम के साथ कहूं।' उसने सोचा कि वह गला खंखारकर स्पष्टता से बोलेगा पर यह उसे बचकाना और फिल्मी लगा। उसने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, 'तुम्हारे ऑफर के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद, पर मुझे यह स्वीकार नहीं। मैं पीयूष और पायस को एकाकार नहीं करना चाहता—मोटा-मोटी पीयूष अमृत है और पायस पवित्र। हिंदी में अंग्रेजी की ध्वनि लाने और सोने में सुहागा करने की मेरी इच्छा नहीं। मैं हिंदी का एक लेखक होना जरूर चाहता था पर न हो सका तो ऐसे कुकर्म में शामिल होऊं, यह मुझे मंजूर नहीं (कुकर्म कहते हुए उसे हर्ष के साथ याद आया कि कुछ दिनों अखबार की उप-संपादकी करते हुए वह 'कुकर्म किया' को काट देता था और उसकी जगह लिखता था 'बलात्कार किया'। अचानक उसे लगा कि वह जिंदगी में कुकर्म का पहली बार सटीक प्रयोग कर रहा है)। तुम शायद मेरी बात समझोगे भी नहीं। तुम शक्तिशाली हो, वित्तशाली हो। शक्ति समझ को नष्ट कर देती है। मैं शक्ति और वित्त नहीं जुटा सका, इसका मुझे अफसोस भी होता रहा हो तो आज से नहीं होना चाहिए। पता नहीं, मुझे लग रहा है कि आदमी हूं और आदमी को न बंदर बनना चाहिए और न ही शेर। देर हो रही है, मुझे दफ्तर जाना है। इतने दिनों बाद तुमसे मुलाकात हुई और मैं तुम्हारे थोड़े काम आया, यह प्रसन्नता की बात है। मैं चलता हूं।' फिल्मी वह शायद नहीं बना पर अति नाटकीय होने से बच न सका।

रमेश एकदम सकपका गया। वह कहीं वही रमेश भी रह गया था जिसने कागज और छपाई का खर्च दिया था, 'गेट आउट' उसके मुंह से नहीं ही निकला। उसके जितने ही नाटकीय या संयत स्वर में उसने कहा, 'तुम एकदम पागल हो गए हो। मैंने किस गुडविल (सद्भावना) और प्रेम से तुम्हारे सामने ऑफर रखा था उसे तुमने समझने की कोशिश तक नहीं की और एक फिजूल हवाई आन में सब डिसमिस कर दिया।' उसने रमेश का हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा, 'मैं सचमुच गुडविल और प्रेम वाला पक्ष भूल गया था। उसके लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूं। भूलने के लिए बहुत माफी मांगता हूं पर बाद में बाकी बातें जो मैंने कहीं उन पर कायम हूं। तुम ने चाय तक नहीं पूछी। चाय पिला दो, फिर मैं चलूंगा।' रमेश ने चाय के लिए हांक लगाई। दोनों के बीच घोर सन्नाटा छा गया लेकिन उसे अपने तथाकथित संयत और दृढ़ व्यवहार पर संतोष-सा हुआ और उसने सोचा कि उसमें 'राइज टु दि अॅकेश्जन' का माद्दा (संकट के वक्त अद्भुत कार्य करने की क्षमता) है। 'राइज टु दि अॅकेश्जन' सोचकर वह हंसा। रमेश के पीयूष नाम बेचने की बात सुनकर उसने सेलिंग द आइडिया वाला अनुवाद करते हुए क्या-क्या नहीं सोच डाला था। पति-पत्नी के रिश्ते तक व्यावसायिक हो रहे हैं; अंग्रेजी सब-कुछ खरीदे जा रही है और हम बेचते चले जा रहे हैं, लेकिन वह खुद रमेश से कहां अलग है—'राइज टु दि अॅकेश्जन' सोचकर धन्य हो रहा है। पहले दिन उसके दिमाग में 'जज नॉट' आया था, 'बुरा जो देखन मैं चला' क्यों नहीं आया?

रमेश ने पूछा, किस बात पर हंसे तो वह बोला—अपने अज्ञान पर।

कैसा अज्ञान?

अपने को सच्चा मानने और दूसरों को झूठा मानने के अज्ञान पर। उसे लगा कि उसका गला रुंध रहा है और कहीं वह रो न पड़े। चाय आ गई थी। उसने जल्दी से चाय का घूंट लिया तो जीभ जल गई। ❖

कीर्ति चौधरी की कविताएं

एकलव्य

चाहा बस तुमने है!
दाहिना अंगूठा यह!
यह तो समर्पित था,
मेरा हर लक्ष्य-उपलक्ष्य,
उपकरण, साध्य—
चरणों में पहले से अर्पित था।

बाण यह किसी का,
प्रत्यंचा भी उसी की थी।
हाथ ये किसी के,
इन हाथों की चंचल गति—यह भी उसी की थी!

मैंने तो इनको निर्माल्य-सा चढ़ाया था।
लक्ष्य अगर बेधे थे,
बाण अगर साधे थे—
मानो उन चरणों पर चढ़े हुए पुष्पों को
बार-बार माथे से लगाया, सिर नवाया था।
सब था तुम्हारा—
अरे, सब-कुछ तुम्हारा!
तुम्हीं उससे अभिज्ञ रहे।

अथवा वह मेरा समर्पण सब झूठा था।
मेरी वह निष्ठा,
वह प्राणों की आकुल प्रतिष्ठा
जिसे अर्पित थी—

तुम थे नहीं!
सिर्फ माटी की मूरत
क्या
माटी की मूरत थी!

•

देव उवाच

उज्ज्वल हैं, उज्ज्वल लेंगे, उज्ज्वलतर देंगे—
मानिक-मुक्ता बोएंगे, जी-भर काटेंगे।
करने दो मंथन उनको यदि बड़ा चाव है—
अमृत तो हम लाएंगे, सबको बांटेंगे।

•

जो व्यक्त नहीं कर पाया हूं

जो व्यक्त नहीं कर पाया हूं
वह क्या मेरे मन में नहीं है?
जो भी सोची जा सकती है
पीड़ा क्या नहीं तन ने सही है?
वहां करुणा की धार उपजी
जो नहीं मुझ तक बही है।
मैंने तो अरे, पा कर लेने को
वह बांह ही जा गही है।

❖❖

मुंबई मर्यादा महोत्सव पर महासभा का वार्षिक अधिवेशन

संबोधन अलंकरण समारोह एवं महत्त्वपूर्ण घोषणाएं

युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञजी एवं युवाचार्यश्री महाश्रमणजी की पावन सन्निधि में तेरापंथ धर्मसंघ का 139वां मर्यादा महोत्सव मुंबई में उत्साहपूर्वक संपन्न हुआ। इस अवसर पर समाज की शीर्षस्थ केंद्रीय संस्था **जैन श्वेताम्बर तेरापंथी** महासभा के कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम समायोजित हुए।.

मर्यादा महोत्सव के प्रथम दिन (दिनांक 6 फरवरी, 2003) संबोधन अलंकरण समारोह के अवसर पर महासभा अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र चौरड़िया द्वारा समाज का सर्वोच्च सम्मान 'समाज भूषण' अलंकरण संघ प्रवक्ता श्री चंदनमलजी बैद को प्रदान करने की घोषणा की गई। साथ ही आगामी वर्ष के 'श्रीमती मनोहरीदेवी डागा समाजसेवा पुरस्कार' के लिए श्री रतनलालजी चौपड़ा, गंगाशहर को चयनित किए जाने की घोषणा की गई। मर्यादा महोत्सव के मुख्य दिवस पर महासभा का प्रथम क्षेत्रीय कार्यालय दक्षिण भारत के चैन्नई शहर में स्थापित करने की घोषणा महामंत्री श्री तरूण सेठिया द्वारा की गई। इसके संयोजक हैं श्री प्रदीप सेठिया (चैन्नई, छोटी खाटू) एवं सह-संयोजक हैं—श्री हेमराजजी श्यामसुखा (बैंगलोर, श्रीडूंगरगढ़)।

महासभा के 89वें वार्षिक अधिवेशन (दिनांक 7 फरवरी, 2003) का प्रारंभ मुनिश्री नीरजकुमारजी के मंगलाचरण से हुआ। युवा उद्यमी अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र चौरड़िया ने अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में वर्ष-भर की प्रगति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए महासभा की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। महामंत्री श्री तरूण सेठिया ने महासभा का वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। कोषाध्यक्ष श्री प्रकाश बैद द्वारा वित्तीय लेखा-जोखा सदन के सम्मुख रखा गया। प्रधान ट्रस्टी श्री रणजीतसिंहजी कोठारी ने कोलकाता स्थित महासभा भवन संबंधी गतिविधियों की जानकारी देते हुए संस्था के आर्थिक सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता पर बल दिया।

महासभा के पूर्व अध्यक्ष श्री कन्हैयालालजी छाजेड़ को पूज्यप्रवर द्वारा 'शासनसेवी' अलंकरण से संबोधन पर महामंत्री ने अभिनंदन प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसे उपस्थित सदस्यों ने हर्षपूर्वक पारित किया।

महासभा का वार्षिक प्रस्तुतीकरण आधुनिक तकनीक के संचार माध्यमों से आकर्षक रूप में रखा गया जिसकी सर्वत्र सकारात्मक प्रतिक्रिया रही। देश-भर से आगत सदस्यगण, अनेक विशिष्ट पदाधिकारीगण एवं गणमान्यजन इस अवसर पर उपस्थित थे। शासनसेवी श्री कन्हैयालाल फूलफगर, श्री मांगीलाल सेठिया, श्री सिद्धराज भंडारी, श्री कन्हैयालाल छाजेड़ आदि महानुभावों ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए संस्था की विकास यात्रा हेतु मंगल कामना प्रकट की। महासभा के उपाध्यक्ष श्री किशनलालजी डागलिया ने धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

संबोधन अलंकरण समारोह एवं मिलन संगोष्ठी

तेरापंथ के आचार्यों द्वारा विशिष्ट श्रावक-श्राविकाओं को उनके श्रद्धा, समर्पण, संघीय सेवाओं आदि का मूल्यांकन करते हुए समय-समय पर विशेष संबोधन प्रदान किए जाते हैं। संबोधन-प्राप्तकर्ता महानुभावों को पिछले 12 वर्षों से महासभा द्वारा मर्यादा महोत्सव के अवसर पर संबोधन अलंकरण प्रदान किए जाते हैं। इस वर्ष इस आयोजन की पूर्व-संध्या (दिनांक 5 फरवरी, 2003) में महासभा द्वारा अलंकृत जनों के सम्मान में स्नेहमिलन गोष्ठी का आयोजन तेरापंथ भवन, कांदीवली के नवनिर्मित महाप्रज्ञ सभागार में किया गया। शासनगौरव मुनिश्री ताराचंदजी ने विशेष उद्‌बोधन प्रदान कर अलंकृत परिवारों को इस संघीय गौरव से प्रेरणा प्राप्त करने का आह्वान किया।

महासभा अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र चौरड़िया ने आगंतुक महानुभावों का स्वागत करते हुए महासभा की विविधमुखी गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की एवं समस्त महानुभावों से महासभा के साथ जुड़ाव हेतु आह्वान किया।

कार्यक्रम का प्रारंभ मुनिश्री मोहजीतकुमारजी के मंगलाचरण के साथ हुआ। संयोजकीय वक्तव्य में श्री भंवरलाल सिंघी ने आयोजन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए अलंकृत व्यक्तियों का परिचय प्रस्तुत किया।

इस प्रकार के प्रथम आयोजन पर उपस्थित सभासदों ने प्रसन्नता व्यक्त की। महासभा के महामंत्री श्री तरूण सेठिया ने आभार प्रकट किया। महासभा के प्रधान ट्रस्टी श्री रणजीतसिंहजी कोठारी ने अलंकृत महानुभावों को साहित्य भेंटकर सम्मानित किया। इस कार्यक्रम में केंद्रीय पदाधिकारीगण की उल्लेखनीय सहभागिता रही। ❖

प्रस्तुतकर्ता : **तरुण सेठिया**, महामंत्री

शीलन

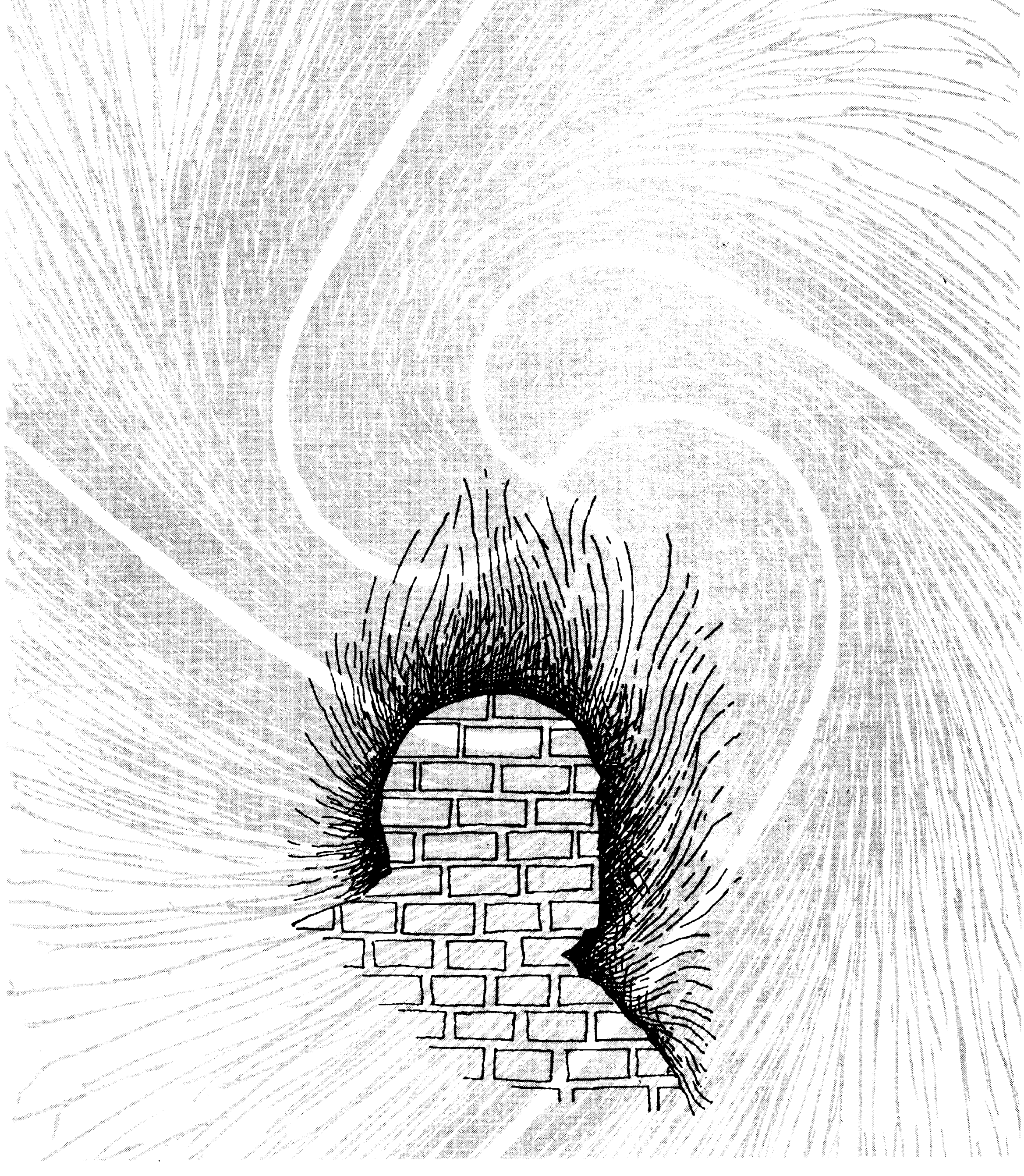

बहरलाल, हमें यह स्वीकार करना होगा कि ज्ञानार्जन हमारे दैनिक जीवन में अंगभूत भूमिका निभाता है। बिना ज्ञान के जीवन अंधकार में भटकने के समान है। साथ-साथ यह भी सही है कि जीवन से जुड़े बिना ज्ञान खोखला है। हमें अपने ज्ञान का अपने अनुभव के परिसर में परीक्षण करना चाहिए, विशेषकर तब, जब हम स्वयं ही उस ज्ञान के स्रोत न हों। कभी-न-कभी हमें अंतर्दर्शी छलांग भी लगानी चाहिए, आस-पास की छिंतरी सूक्ष्मताओं से आंखें हटाकर व्यापक छवि बनानी चाहिए। इसमें संदेह है कि हम अपने फिलहाल के ज्ञान की पुनर्रचना से ही कुछ और वास्तविक नई सीख ले सकते हैं। सीखने की प्रक्रिया में नए अनुभव का तत्त्व निहित है। अन्यथा हमारी मानसिक गतिविधि याददाश्त के दायरे में सिमटी रहती है, उससे कभी आगे नहीं निकलती। अगर हम वास्तव में जीना और ज्ञानार्जन करना चाहते हैं तो हमें नए स्पष्टीकरणों और अनुभवों के प्रति सजग रहना चाहिए।

—त्सुनेसाबुरो माकीगुची

सत्य का एक अर्थ वाणी की ऋजुता है। इसका सीधा संबंध आचार-शास्त्र से है। सामान्यतया हिंसा को काय के स्तर पर ही व्याख्यायित किया जाता है। पर वास्तव में हिंसा के हजारों प्रकार हैं। सत्य और अहिंसा का गहरा संबंध है। जीव की हिंसा हो, ऐसी सत्य बात भी कही जाए तो वह सत्य नहीं है। अहिंसा सत्य को एवं सत्य अहिंसा को प्रभावित करते हैं।

शब्द : सृजन भी संहार भी

समणी सत्यप्रज्ञा

अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द है और शब्दों के सहारे ही हमारे विचार एक-दूसरे तक संप्रेषित होते हैं। शब्द अपने-आप में जड़ हैं। लेकिन अभिव्यक्ति के रंग-ढंग, वक्ता-श्रोता के हाव-भाव से जुड़कर ये जीवंत बन जाते हैं। इन्हीं के सहारे विचार और मंतव्य मुखर होते हैं। ज्ञान-विज्ञान, प्रेरणा-प्रोत्साहन की सारी सृष्टि के बीज में 'शब्द' ही है। शब्दों से गढ़ी वाणी सत्य होती है, पर कभी वह असत्य भी हो सकती है। हर व्यक्ति को सिखाया तो यही जाता है कि असत्य नहीं बोलना चाहिए। हर व्यक्ति जानता भी है—असत्य नहीं बोलना चाहिए। फिर भी केवल सिखाने या जानने से ही अच्छी-बुरी बातों का स्वीकार या परिहार हो जाए—नियम नहीं, न सदा संभव है।

आज तो असत्य बोलने में अनेक प्रेरणाएं काम कर रही हैं। आगम की भाषा में क्रोध, लोभ, भय और हास्य-वश व्यक्ति असत् संभाषण करता है। अहंकार, प्रतिष्ठा, स्वार्थ या कौतूहल के संस्कार मुखर होते हैं, व्यक्ति अनायास असत्य का आलंबन ले लेता है। आलंबन भी ऐसा कि उसमें सत्य का भ्रम हो सके। इस रूप में प्रयुक्त किए गए शब्द ही घातक होते हैं, चोट पहुंचाने वाले होते हैं।

क्रोध में प्रयुक्त किया गया सत्य कई बार छिपी हुई सचाइयों को खोल कर रख देता है। तीव्र क्रोध की अवस्था में भाव-तरंगों का प्रक्षेप जिस दिशा में होता है, बहुत-से अनर्थ घटित हो जाते हैं। क्रोध आदि की स्थिति में जुबान खुलती है, पर विवेक की आंखें बंद हो जाती हैं। फलतः व्यक्ति हित-अहित के भेद से शून्य हो जाता है। लोभ, स्वार्थ और अपने तथाकथित महत्त्व को बनाए रखने या प्रमाणित करने के लिए व्यक्ति अपनी वास्तविकता को भूल जाता है। इस प्रकार के झूठ से मनुष्य के भीतर बैठी पशुता प्रकट हो जाती है। इस पशुता में मानवता खो जाती है। परिस्थिति और दुर्बलता के दबाव से उत्पन्न भय व्यक्ति को असत्य की ओर ले जाता है। भय अपने द्वारा की गई अपनी ही हिंसा है, अपनी शक्तियों का अस्वीकार है। ऐसी परिस्थिति में सब-कुछ जानते हुए भी सत्य मौन हो जाता है, असत्य मुखर हो जाता है। आक्षेप, व्यंग्य, तिरस्कार व अवहेलना प्रायः हास्य के आवरण में लिपट कर बाहर आते हैं। इस प्रकार से बोले गए शब्द बोलने वाले के लिए भले पानी के बुलबुले या रेत में लिखे अक्षर के समान क्षणिक हों, पर जिसके लिए कहा जाता है, उसके लिए तो वे ताम्र पत्र में अंकित अक्षरों की तरह स्थाई हो जाते हैं। हास्य, व्यंग्य या द्विअर्थी शब्दों के आवरण में किया गया मर्म का भेदन अनेक अनर्थों का जनक बन जाता है।

प्रयोक्ता का मंतव्य ही शब्द में प्राण भरता है। श्रोता की समझ ही उसे आकार देती है।

अपनी शांति व समाधि के लिए व्यवहार में तर्क नहीं होना चाहिए। व्यवहार तर्क का क्षेत्र नहीं है। व्यवहार में अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित, सही-गलत या इस तरह का कोई भी निर्धारण सदैव तर्क के आधार पर ही नहीं किया जा सकता। एक समय, एक परिस्थिति में जो सही है, भिन्न समय और परिस्थिति में वही गलत हो सकता है। इसलिए

व्यवहार को हमेशा ही तर्क का विषय बनाया जाना अच्छा नहीं है।

अलबत्ता सही-गलत या उचित-अनुचित की कसौटी सदा तर्क पर ही कसी जा सकती है। व्यक्ति समाज में जीता है। चाहे-अनचाहे क्रिया-प्रतिक्रिया के अनेक चक्रों से वह गुजरता है। भीतर के संस्कार भी उसे प्रेरित करते हैं, इसलिए हर कथनीय शब्द में उसे सार्थकता की तलाश रहती है। उसके अभाव में बहुत-कुछ टूट-फूट जाता है, बिना किसी तरह की आवाज किए।

शिष्ट-सौम्य हास्य जीवन का स्वर्ग माना जाता है। मुस्कान ही बता देती है कि आपका मन निर्मल है। 'सेंस ऑफ ह्युमर' आदमी को सही ढंग से जीने का बल प्रदान करता है और हंसी सब ग्रंथियों को खोलने वाली होती है। पर कई वार कुटिल बुद्धि-कौशल से यही हंसी ग्रंथियों पर आवरण डालने या नई ग्रंथियां बांधने के लिए प्रयुक्त हो जाती है। हास्य, व्यंग्य या मजाक में किए गए किसी कथन से हम शत्रु को मित्र नहीं बना सकते। लेकिन मित्र को शत्रु बना लेते हैं। इसीलिए हास्य के संदर्भ में विशेष सावधानी की अपेक्षा रहती है।

सद्भाव का प्रतिषेध, असद्भाव का उद्भावन, अर्थांतर और अपमान सूचक शब्दों का प्रयोग भी प्रकारांतर से असत्य के ही प्रकार हैं। क्रोध, लोभ भय व हास्य के रूप में असत्य के कारणों का संकेत तो वस्तुतः उपलक्षण मात्र है। दसवेआलियं व्याख्या के अनुसार क्रोध के कथन द्वारा मान को भी सूचित कर दिया गया है। लोभ का कथन करके माया के ग्रहण की सूचना दी है। भय और हास्य के ग्रहण से राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान आदि का ग्रहण होता है। वास्तव में व्यक्ति क्रोध आदि की भावनाओं से ही असत्य बोलता है। विविध संवेगों पर विजय प्राप्त करके ही वह सत्य की साधना कर सकता है।

सत्य का एक अर्थ वाणी की ऋजुता है। इसका सीधा संबंध आचार-शास्त्र से है। सामान्यतया हिंसा को काय के स्तर पर ही व्याख्यायित किया जाता है। पर वास्तव में हिंसा के हजारों प्रकार हैं। सत्य और अहिंसा का गहरा संबंध है। जीव की हिंसा हो, ऐसी सत्य बात भी कही जाए तो वह सत्य नहीं है। अहिंसा सत्य को एवं सत्य अहिंसा को प्रभावित करते हैं।

असत्य और हिंसा के बीच सीधा संबंध देखा जा सकता है। झूठ भी हिंसा है, निंदा भी हिंसा है, चुगली भी हिंसा है। भाषा से जुड़ी सूक्ष्म सत्य और अहिंसा को समझकर ही विवेक को प्राप्त किया जा सकता है। अनावश्यक, अस्पष्ट या असंबद्ध भाषा भी हिंसा का बड़ा हेतु बन सकती है। साधक को सत्य-व्रत, वचन-अनुशासन एवं भाषा-विवेक के लिए आगमों में बार-बार प्रेरणा दी गई—'कोहं असच्चं कुवेज्जा'—अर्थात् क्रोध एवं असत्य को विफल करें। क्रोध में बोलें नहीं, बिना पूछे कुछ भी बोलें नहीं। अनावश्यक न बोलना सबसे बड़ा मौन है। इस वाक्य को एक आदर्श के रूप में सामने रखा जा सकता है। पूछे जाने पर भी असत्य न बोलें। किसी के प्रति गर्हा सूचक शब्द न बोलें। जिससे अन्य को उत्तेजना आए, ऐसा सत्य भी न कहें। इस प्रकार विवेकपूर्वक प्रयुक्त किया गया सत्य जीवन में उतरता है तो अहिंसा सुलभ हो जाती है।

शब्द—जो बोला जाता है, शब्द—जो सुना जाता है—सृष्टि के सृजन या संहार की क्षमता रखता है। इसलिए शब्द के प्रयोक्ता और श्रोता—दोनों को ही सावधानी की अपेक्षा रहती है। मौन में तो संयम की ही अपेक्षा रहती है। वाणी में संयम और विवेक दोनों की अपेक्षा की जाने लगी है कि किसी भी शब्द का प्रयोग करने से पहले अपने शब्द को परिभाषित-व्याख्यायित करे। दर्शन, तर्क या अन्य विधाओं से जुड़ी यह विधा व्यवहार की विधा नहीं हो सकती। वहां तो व्यवहार के आधार पर शब्द को समझा जाता है और यह समझ ही शब्द की आत्मा बनती है, उसकी परिभाषा या मीमांसा करती है। वक्ता के शब्द ही श्रोता तक नहीं पहुंचते, उन शब्दों के नेपथ्य से गूंजने वाले भावों की झंकार भी वहां पहुंचती है, अपना प्रभाव उत्पन्न करती है।

असत्य का अस्तित्व शब्दों में ही नहीं, माया-पूर्ण व्यवहार में भी है। असत्य बोला जा सकता है मौन के द्वारा, संदिग्धात्मक वाणी के द्वारा, एक व्यंजन पर बल देकर और ऐसे सभी असत्य स्पष्ट शब्दों में कहे गए असत्य से अनेक गुणा हीन एवं बुरे है।

सत्य वह है जिसे मन माने और जिसके मानने से किसी का अहित न हो, सबका हित हो। सत्य ही विश्वास का माध्यम बनता है। मन विकल्पों में जीता है, आत्मा संकल्प में जीती है। संकल्प चेतना को जागृत कर असत्य और असत्य के कारणों का परिहार किया जा सकता है।

जो आपके मौन को नहीं समझ पाएंगे वे भला आपके शब्दों को क्या समझ पायेंगे, इसलिए खामोश रहो या ऐसी बात कहो जो खामोशी से बेहतर हो। तभी आपके शब्द सत्य और अहिंसा को प्राणवान बना सकेंगे। ❖

मनुष्य का मन बड़ा चंचल होता है। वह नित्य नई-नई मांगें करता रहता है। इन मांगों का कभी अंत नहीं होता। एक मांग पूरी हुई नहीं कि दूसरी सामने आ जाती है। घर में चीजों का ढेर लग जाता है। उनमें न जाने कितनी चीजें ऐसी होती हैं जो सालों हमारे काम नहीं आतीं। रोज फैशन बदलता है और आज हम जिस चीज को लाते हैं, वह कुछ ही समय में पुरानी पड़ जाती है। उसे हम एक ओर डाल देते हैं और नए फैशन की चीज ले आते हैं। कुछ समय बाद उसके साथ भी वैसा ही होता है।

अपरिग्रह : जीवन का मधुर रस

यशपाल जैन

अपरिग्रह और परिग्रह में केवल एक अक्षर का फर्क है किंतु उनके अंतर में जमीन-आसमान का अंतर है। अपरिग्रह भवसागर से तारता है, परिग्रह डुबोता है। इसी से धर्मपुरुषों और धर्मग्रंथों ने अपरिग्रह का विरुद गाया और परिग्रह की भर्त्सना की है। महात्मा गांधी ने तो अपरिग्रह को अपने एकादश व्रतों में सम्मिलित किया था और अपने जीवन में तथा अपने आश्रम में उसके पालन का आग्रह रखा था।

सांसारिक जीवन में हम नाना प्रकार के प्रलोभनों से घिरे रहते हैं। हमारे चारों ओर मोह-माया का जाल बिछा रहता है। भौतिक वस्तुओं का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि हम निरंतर उनका संचय करते जाते हैं। इतना ही नहीं, उन वस्तुओं के प्रति हमारी आसक्ति बड़ी गहरी होती है। इस आसक्ति से बिरले ही बच पाते हैं।

अपने गंगोत्री प्रवास में हमने देखा कि मृत्यु से जूझते एक साधु के हाथ कुछ टटोल रहे थे। उनके साथी से पूछने पर पता चला कि वे अपनी पोटली खोज रहे थे, जिसमें उनकी जमापूंजी थी। परिग्रह की माया ही कुछ ऐसी है जो किसी को नहीं छोड़ती।

मनुष्य का मन बड़ा चंचल होता है। वह नित्य नई-नई मांगें करता रहता है। इन मांगों का कभी अंत नहीं होता। एक मांग पूरी हुई नहीं कि दूसरी सामने आ जाती है। घर में चीजों का ढेर लग जाता है। उनमें न जाने कितनी चीजें ऐसी होती हैं जो सालों हमारे काम नहीं आतीं। रोज फैशन बदलता है और आज हम जिस चीज को लाते हैं, वह कुछ ही समय में पुरानी पड़ जाती है। उसे हम एक ओर डाल देते हैं और नए फैशन की चीज ले आते हैं। कुछ समय बाद उसके साथ भी वैसा ही होता है। हम यह कभी नहीं सोचते कि जिसकी हमें आवश्यकता नहीं है उसे हम संगृहीत करते हैं तो उस व्यक्ति का हक छीनते हैं, जिसको उसकी आवश्यकता है।

वस्तुतः प्रकृति का नियम ही ऐसा है कि वह जिसे जन्म देती है, उसे दो हाथ भी देती है। दोनों हाथों से कर्म करो, रोज कमाओ, रोज खाओ। संग्रह का अर्थ होता है दूसरे को उससे वंचित करना। आज बीस-पचीस प्रतिशत लोगों ने अधिकांश साधन अपनी मुट्ठी में बंद कर रखे हैं। इसी से हम घोर विषमता के दुष्चक्र में फंसे हैं। जमाव अभाव का जनक होता है।

व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। वह समाज के बीच रहता है। वह तभी चैन से रह सकता है जबकि दूसरे भी चैन से रहें। उसके अंतर में मधुर संगीत के स्वर तभी फूट सकते हैं जबकि सबके भीतर आनंद की धारा प्रवाहित हो। भूख से बिलबिलाते आदमी को देखकर सुख की नींद कोई हृदयहीन व्यक्ति ही सो सकता है। इसी से उपनिषदकार ने कहा है— 'त्येन त्यक्तेन भुंजीथाः' अर्थात् बांटकर खाओ। उपनिषदकार यह भी तो कह सकता था कि पहले अपना पेट भरो, तब दूसरे की चिंता करो। पर इसके विपरीत उसने

त्याग की बात कही है। जीवन उसी का सार्थक होता है जो दूसरों को खिलाकर स्वयं खाता है।

ऐसा व्यक्ति परिग्रह की कल्पना भी नहीं कर सकता।

परिग्रह का बीज इंसान के भीतर से उगता है। पहले व्यक्ति के अंतर में वस्तुओं की लालसा उत्पन्न होती है। यदि व्यक्ति उस लालसा को विवेक की कसौटी पर कसना सीख ले तो वह परिग्रह की व्याधि से पीड़ित हो ही नहीं। पर वह विवेक की कसौटी हर आदमी के पास नहीं होती। इसलिए वह सहज ही लालसा के चंगुल में फंस जाता है। परिग्रह का अभिशाप वैसे तो सब जगह देखने में आता है, किंतु उसकी समस्या नगरीय जीवन में विशेष रूप से देखने में आती है। लुभावनी वस्तुओं से नगरों के बाजार अटे पड़े रहते हैं। उनके बीच पहुंचकर आदमी अपनी सारी सुध-बुध भूल जाता है।

परिग्रह दो प्रकार का होता है। एक बाह्य और दूसरा अभ्यंतर। बाह्य परिग्रह स्थूल आंखों से दिखाई दे जाता है। लेकिन अभ्यंतर परिग्रह को देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता होती है।

हमारे भीतर जाने किस-किस प्रकार के विचारों का विशाल भंडार होता है और हम उनका बोझा लिए फिरते हैं। यदि हम उन विचारों का गंभीरतापूर्वक विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि उनमें से एक बहुत बड़ा प्रतिशत निरर्थक वस्तुओं की भांति निरर्थक विचारों का है। हम रात-दिन विचारों की दुनिया में डूबे रहते हैं। व्यतीत के बारे में सोचते हैं, पर हमारा इस बात की ओर ध्यान नहीं जाता कि बीता कल फिर आने वाला नहीं है। इसी प्रकार भविष्य के बारे में सोचते हैं, पर अनागत का क्या भरोसा! यदि हम अपना ध्यान केवल वर्तमान पर रखें और केवल सार्थक बातें ही सोचें तो व्यर्थ के विचारों के भार से मुक्त हो सकते हैं।

ये दोनों ही परिग्रह—बाह्य और अभ्यंतर—मनुष्य के लिए भारभूत हैं। बाह्य परिग्रह हमें मोह-माया में लिप्त रखता है और अभ्यंतर परिग्रह हमारे मन पर तनाव पैदा करता है। दोनों परिग्रह इंसान के लिए अहितकर हैं। परिग्रह किसी भी प्रकार का हो, बंधनकारक होता है। यदि पक्षी के पंखों के साथ पत्थर बांध दें तो वह उड़ नहीं पाएगा और धरती पर पड़ा-पड़ा छटपटाता रहेगा। कुछ वैसी ही अवस्था परिग्रहग्रस्त मनुष्य की होती है।

इसके विपरीत अपरिग्रही व्यक्ति न भौतिक वस्तुओं के बंधन से जकड़ा होता है और न विचारों के व्यामोह से त्रस्त होता है। वह फूल की तरह हल्का होता है और बड़े आनंद भाव से अपना प्रत्येक कार्य करता है।

गीता इस दिशा में बड़ी प्रेरणा देती है। वह परिग्रह का पाठ ही नहीं पढ़ाती, यह भी बताती है कि उस मार्ग पर किस प्रकार चला जा सकता है। उसकी पहली शर्त अनासक्ति है। अनासक्त व्यक्ति कभी परिग्रही हो नहीं सकता। वह राग-द्वेष से परे होता है। राग-द्वेष की ऐसी जोड़ी है जो एक-दूसरे से अटूट रूप में जुड़ी है। राग करने वाला द्वेष से बच नहीं सकता। उनकी उपमा घड़ी के लटकन से दी जाती है, जो एक ओर को जाकर स्वतः ही दूसरी ओर चला जाता है।

अपरिग्रह के बिना मानव जीवन उस पुष्प की भांति होता है, जिसमें चमक-दमक भले ही हो, लेकिन सुगंध नहीं होती। अपरिग्रह जीवन को मधुर रस प्रदान करता है और उस आनंद की अनुभूति कराता है जिसके बिना न जीवन सार्थक होता है, न कृतार्थ।

स्मरण रहे कि अपरिग्रह के बिना अहिंसा का पालन कदापि नहीं किया जा सकता। हिंसा का मुख्य कारण परिग्रह है। महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, नानक—सबने इस सत्य को हृदयंगम करके स्वेच्छा से इस मार्ग का अनुसरण किया। परिग्रह के नाम पर उनके पास सब-कुछ था, उसे उन्होंने त्यागा और अकिंचन बने। उन्होंने अपने जीवन से दिखा दिया कि एक फकीर ही सच्चा कुबेर होता है। जिसके पास अपना कुछ नहीं, वह दुनिया की दौलत का मालिक होता है, क्योंकि उसके पास वह दौलत होती है जो भौतिक संपदा को गौण बना देती है।

हम देखते हैं कि व्यक्ति जन्म लेता है तब उसके हाथ खाली होते हैं और जब वह जाता है तब भी उसके हाथ खाली होते हैं। इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत जो होता है वह नाटक से अधिक कुछ नहीं होता है।

इस धरा पर जाने कितनी चीजें हैं जो हमें अपरिग्रह का पाठ पढ़ाती हैं। सूर्य प्रकाश देता है, ऊष्मा देता है, नदी जल देती है, वायु जीवन देती है, वृक्ष फल-फूल देते हैं, हरियाली जीवन को हरा-भरा बनाती है। पर इनमें कोई भी परिग्रही नहीं। वे अपना सर्वोत्तम भर-भर हाथों लुटाते हैं। पर अपने लिए कुछ भी सहेज कर नहीं रखते।

वास्तव में जो देता है, वही पाता है। ध्यान रहे कि उच्च कोटि की प्राप्ति वस्तुओं की नहीं, प्रेम की होती है। जिसे प्रेम मिलता है वह सच्चा धनी होता है। वस्तुएं नाशवान होती हैं, प्रेम अमर होता है।

यह जीवन एक सफर है। जो जितना हल्का होता है उसकी यात्रा उतनी ही सहज, सुगम और आनंददायक होती है। ❖

अमीर ने झटपट घोड़े पर जीन कसवाई और सरपट उस दिशा में दौड़ा जिधर गरीब ने कहा था कि वह गया है। देवदूत बहुत दूर नहीं निकला था। धूप में तेजी आ गई थी। वह एक पेड़ की छांव तले सुस्ता रहा था। अमीर ने उसे दूर से ताड़ लिया। घोड़े के एड़ लगाई। देवदूत के सामने उतरकर उसके पैरों पर पड़ गया। गिड़गिड़ाने लगा—'महात्मा, मैं बड़ा पापी हूं। मैंने आपका अनादर किया। आप दुत्कारें, ठुकराएं, जो दंड दें, सिर माथे। बस, मुझे क्षमा कर दें। एक बार फिर मेरे घर पर चरणों की धूल डालें। मुझे सेवा का अवसर दें। आप घोड़े पर बैठें, मैं आपके पीछे पैदल चलूंगा।'

बालकथा

एक महल एक झोंपड़ी

गोपालदास

सांझ ढलने लगी थी। तारे झिलमिलाने लगे थे। सड़कों पर धुंधलका छाया था। वह देवदूत थका-मांदा था। बस्ती में कहीं रात बिताने का ठिकाना ढूंढ़ रहा था। एक बड़ी हवेली के सामने रुका। द्वार खटखटाया। एक बार, दो बार, कई बार। बहुत देर बाद भीतर से किसी ने पूछा—'कौन है?'

'एक राहगीर हूं।'

'क्या चाहते हो?'

'पट खोलिए तो।'

फिर वही प्रश्न—'क्या चाहते हो?'

'आप बाहर आएं तो बताऊं।'

सांकल खड़की। अधखुले द्वार से किसी ने झांका। हवेली का मालिक था। भौंहें चढ़ी थीं।

स्वर उतावला था 'अब बोलो। क्या चाहते हो?'

'बहुत दूर से आ रहा हूं।

'तो मैं क्या करूं?'

'रैनबसेरा चाहता हूं।'

'यह सराय नहीं है, मेरा घर है।'

'पौ फटते ही चला जाऊंगा।'

'हर राह चलते उठाईगीरे को घर में जगह देने लगा तो मेरा ठौर-ठिकाना भी छिन जाएगा।'

'आप अमीर हैं। भगवान ने इतना-कुछ दिया है।'

'बड़े आए भगवान की दुहाई देकर ठगने वाले। चलो, चलो रास्ता नापो'। उसने फटाक से पट भेड़ लिए और भीतर से सांकल चढ़ा दी। देवदूत फिर सड़क पर खड़ा था।

हवेली के सामने एक झोंपड़ी थी। उजड़ी छत, झीनी फूस की दीवारें। प्रवेश पर एक छलनी हुई टाट की बोरी थी। भीतर एक ढिबरी टिमटिमा रही थी।

वह झोंपड़ी की ओर बढ़ा। पास जाकर पुकारा—'भीतर कोई है?

मटमैले वस्त्र पहने, चीकट ओढ़न लपेटे, एक बूढ़ा बाहर निकला—'क्या चाहते हो, भाई?'

'बहुत दूर से आ रहा हूं। थक गया हूं। रात काटनी है। आप जगह देंगे?'

'क्यों नहीं! भीतर आ जाओ, आओ।'

बूढ़े के मीठे बोल में चंदन की शीतलता थी।

झोंपड़ी भीतर से साफ-सुथरी थी। एक कोने में हल रखा था। दूसरे कोने में पुआल का गट्ठर। मांझ की एक खटिया थी, कसी हुई। उस पर कथरी पड़ी थी। इने-गिने बरतन-भांडे थे, सब चमकते हुए। चूल्हा जल रहा था। बूढ़े की बीवी रोटी सेक रही थी। एक थाली में टिक्कड़, प्याज-लहसुन की चटनी और हरा साग परसे हुए थे। बूढ़ा शायद भोजन के लिए बैठा ही था। उसने देवदूत से पूछा—'कुछ खाया भी नहीं होगा?'

'नहीं।'

'रूखा-सूखा जैसा है, आरोगो।'

बुढ़िया ने टोका—'उधर नांद में पानी भरा है। हाथ-मुंह धो लो। कुछ सुस्ता लो। मैं तवे पर पुए उतार देती हूं। भूभल में आलू भून दूंगी।'

बूढ़े की बत्तीसी खिल गई।

'भले आए भाई, हमारे भाग भी खुल गए', उसने जीभ से चटखारा लिया।

'पाहुने देवता होते हैं,' बुढ़िया ने कहा।

देवदूत ने भरपेट भोजन किया। सोने को उसे इकलौती खटिया दे दी गई। बूढ़ा-बुढ़िया धरती पर पुआल बिछाकर पड़े रहे। पलक झपकते सवेरा हो गया।

देवदूत चलने की तैयारी करने लगा। विदा लेते समय बोला, 'आपको कष्ट दिया।'

'कष्ट कैसा, भाई!'

'आपकी संगत में बड़ा सुख मिला। आपकी कोई इच्छा हो, कहें। पूरी होगी।'

'हमारे पास भगवान का दिया संतोष-धन है। हम उसी में मगन हैं।'

'आप कोई भी तीन वर मांगें।' वे चुप रहे।

'बोलिए बाबा, कुछ तो मांगिए।'

बुढ़िया ने पहल की—'बेटा, हम सदा ऐसे ही मेल-प्यार में बने रहें।'

'ऐसा ही होगा। और?'

बूढ़े का भी मुंह खुला—'हम सदा स्वस्थ रहें, मेहनत-मजदूरी से कमाएं, किसी के आगे हाथ न फैलाएं। और हां, तुम जैसे पाहुने आएं तो उनकी सेवा करते रहें।' 'यह भी होगा। तीसरा?' बूढ़ी जोड़ी की बांछें खिल रही थीं। सब तो मिल गया, सुख, स्वास्थ्य। वे एक-दूसरे को देख रहे थे। समझ में नहीं आ रहा था और क्या मांगें।

'मैं बताऊं?'

'हां, हां।'

'आपको रहने को एक घर नहीं चाहिए?'

'अपने ऊपर छत कौन नहीं चाहता भाई? पर गंगुआ तेली महल का सपना देखे तो...'

उसकी बात पूरी नहीं हुई थी कि झोंपड़ी लोप हो गई और उसके स्थान पर एक सुंदर-सी हवेली खड़ी थी। 'बाबा, आपका घर। भीतर पधारें। मुझे आज्ञा दें। मैं चलता हूं।'

दिन चढ़ने पर बड़ी हवेली के अमीर ने खिड़की खोली। सामने जो देखा तो विश्वास नहीं हुआ। आंखें मल-मलकर देखा। दृश्य वही था। रात ही रात में यह क्या जादू हो गया? कोई जिन आया था या देवदूत? बीवी आई। उसने भी देखा और दांतों तले उंगली दबा ली।

'वह झोंपड़ी कहां गई? यह हवेली कहां से आ गई?' दोनों एक-दूसरे से यही प्रश्न कर रहे थे। अमीर अधीर हो रहा था। बीवी से बोला—'जाकर पता तो लगाओ, यह अचंभा कैसे हुआ।'

वह दौड़ी गई। गरीब से पूछा। उसने सारी कथा सुना दी, तीन वर की बात भी। वह उल्टे पांवों लौटी। अमीर को बताया। वह सिर पीटने लगा। हाय-हाय कर रोने लगा।

'हे भगवान, यह मैंने क्या किया। वह आदमी पहले हमारे घर आया था। रैनबसेरा मांग रहा था। फटेहाल देखकर मैंने उसे दुरदुरा दिया। दरवाजा बंद कर दिया। मैं उसे ठहरा लेता तो हम मालामाल हो जाते। मैं बड़ा अभागा हूं।'

'रोने-पीटने से क्या होगा?'—बीवी ने झिड़का, 'वह अभी कितनी दूर गया होगा। लपको और उसे मना लाओ।'

'हां, यही करूंगा, अभी। मैं उसके पैर पकड़ लूंगा।'

'और वे तीन वर मांगना न भूलना।'

'वह कैसे भूल सकता हूं?'

अमीर ने झटपट घोड़े पर जीन कसवाई और सरपट उस दिशा में दौड़ा जिधर गरीब ने कहा था कि वह गया है। देवदूत बहुत दूर नहीं निकला था। धूप में तेजी आ गई थी। वह एक पेड़ की छांव तले सुस्ता रहा था। अमीर ने उसे दूर से ताड़ लिया। घोड़े के एड़ लगाई। देवदूत के सामने उतरकर उसके पैरों पर पड़ गया। गिड़गिड़ाने लगा—'महात्मा, मैं बड़ा पापी हूं। मैंने आपका अनादर किया। आप दुत्कारें, ठुकराएं, जो दंड दें, सिर माथे। बस, मुझे क्षमा कर दें। एक बार फिर मेरे घर पर चरणों की धूल डालें। मुझे सेवा का अवसर दें। आप घोड़े पर बैठें, मैं आपके पीछे पैदल चलूंगा।'

एक सांस में वह सब कह गया। देवदूत छल-कपट का यह नाटक समझ रहा था। मन-ही-मन मुस्करा रहा था। सोच रहा था, यह अमीर मुझे कैसा मूर्ख बना रहा है। वह बोला—'भाई, मैं अभी तो नहीं चल सकता। हां, जब उधर से लौटूंगा, तुम्हारे द्वार अवश्य आऊंगा। अब तुम जाओ।'

'आप बड़े कृपालु हैं महात्मा, मैं धन्य हुआ।'

अमीर उठा नहीं। हाथ जोड़कर देवदूत के सामने बैठा रहा। देवदूत इसका भेद जानता था।

'तुम भी तीन वर चाहते हो?'

'आपकी कृपा होगी तो—'

'जो चाहोगे, मिलेगा। जाओ, घर जाओ। बीवी तुम्हारी बाट जोह रही होगी।'

अब अमीर घर के लिए रवाना हुआ। उसके मन में लड्डू फूट रहे थे। सोना-चांदी, हीरे-मोती, महल-दुमहले, बाग-बगीचे, सब उसके होंगे। मुंह से निकलने-भर की देर है। घर पहुंचने से पहले वह तीनों वर मांग लेना चाहता था। उसे डर था, कहीं बीवी अपनी टांग न अड़ा दे। वह अपने विचारों में इतना खोया था कि उसके हाथ से लगाम छूटकर नीचे लकट गई। उसे खींचने वह झुका ही था कि पास के जंगल में शेर दहाड़ा। डर से बिदककर घोड़ा उछला। लगाम उसकी टांगों में उलझ गई। उससे अड़चन हुई तो वह और उछल-कूद करने लगा। अमीर ने उसे बहुत थपथपाया, पुचकारा। घोड़ा न शांत हुआ न वश में। अमीर घबराया। कहीं गिरकर उसकी हड्डी-पसली न टूट जाए। वह क्रोध में भरकर चिल्लाया : 'अच्छा हो, मुझे मारने से पहले तू मर जाए।'

घोड़ा वहीं ढेर हो गया। अमीर का एक वर पूरा हुआ। अमीर बड़ा लालची था। जीन उसने चाव से बनवाई थी। सैकड़ों रुपए लगे थे। उसे कैसे छोड़ जाता? तसमे ढीले किए। जीन खोली, अपने कंधे पर लादी और चलने लगा।

उसे एक वर बेकार जाने का पछतावा हुआ, किंतु दो अभी शेष थे। अब चूक नहीं होगी। वह फिर विचारों में डूब गया।

सूरज सिर पर चढ़ आया था। रास्ता रेतीला था। उसके पैर जल रहे थे। शरीर पसीने से लथपथ था। जीन का बोझ मन-भर हो गया था। गर्दन में गड़ने लगी थी। कभी एक कंधे पर रखता कभी दूसरे पर। उसकी रकाब तवे-सी तप रही थी। जब किसी अंग से छू जाती, लगता लोहा दाग दिया है। उसके पास से एक चिड़िया उड़ती गई। कैसी मुक्त है? उसे अपनी बीवी का स्मरण हो आया। आराम से घर में होगी, नहाई होगी, सजी होगी, नौकरों पर हुक्म चला रही होगी, ठंडा शरबत पी रही होगी। उसे जलन हुई। उसे क्या पता मुझ पर क्या बीत रही है! उसे क्रोध आ गया। उसके मुंह से निकला—'इस आग बरसती घाम में आराम से बैठी हो, इससे चिपक जाओ, तब जानो।'

जीन अमीर के कंधे से लोप हो गई। उसका दूसरा वर पूरा हुआ। उसे फिर पछतावा हुआ, पहले से अधिक। लेकिन, अभी एक वर शेष था। उसने निश्चय किया कि घर पहुंचकर, ठंडे दिल से सोचकर, एक ही वर में अपने सब मनोरथ पूरे कर लेगा।

जीन के बोझ से हल्का होने से उसके पैरों में तेजी आ गई। अनेक इच्छाएं उसके मन में उमड़ रही थीं। उसे

इधर-उधर की सुध-बुध नहीं थी। सहसा उसे चीख सुनाई दी, 'मुझे बचाओ, बचाओ। मैं जल रही हूं।'

वह चौकन्ना हुआ। आंख उठाई। अपने घर के सामने खड़ा था। घर में हाहाकार मचा हुआ था। उसे भेदती यह चीख थी।

'अरे, जब तक वह आएंगे, यह भट्ठी-सी जीन मेरे प्राण ले लेगी। मैं राख हो जाऊंगी।'

सारी सचाई अमीर के मन में कौंध गई। वह लपककर घर में घुसा। बीवी बेहाल हो रही थी।

'तुम आ गए। यह नासपीटी जीन कहां से आकर मुझसे चिपक गई है। छूटती ही नहीं। इसमें अंगारे सुलग रहे हैं। कुछ तो करो। मुझे बचाओ।'

'शांति रखो, शांति। सब ठीक हो जाएगा। मुझे वह महात्मा मिल गया। पहले मैं अपना वर मांग लूं। सारा कुबेर का धन मिल सकता है। बस, थोड़ी देर सबर करो।'

बीवी बिफर उठी।

'मेरी जान सांसत में पड़ी है और तुम कहते हो, सबर करूं। मैं राख हो रही हूं और तुम्हें कुबेर का धन सूझ रहा है। धिक्कार है। तुम्हारा ही पाप मैं भुगत रही हूं। मैं मर गई तो तुम सुख से नहीं रहोगे।'

अमीर बेबस हो गया।

बीवी को जीन से छुटकारा दिलाने के लिए उसे तीसरा वर मांगना पड़ा। जीन से मुक्ति पाते ही बीवी ने चैन की सांस ली। अमीर सिसक रहा था। उसके सपने चूर-चूर हो गए थे।

वह करमहीन रहा। ❖

(एक यूरोपीय कहानी के आधार पर)

अब जमाना बदल गया है। दुनिया भर के शिक्षाविदों की आंखें खुल गई हैं। सिर्फ इतिहास, भूगोल, भाषा-ज्ञान या गणित से मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता, यह बात समझ में आ चुकी है। मनुष्य सिर्फ बुद्धि का पुतला ही बन कर रह जाए, ऐसा पामर बना रह जाए कि हाथ पैर चला भी न सके—ऐसे खयाल मात्र से आज के शिक्षाशास्त्री थरथरा उठे हैं। यह बात उनके दिमाग में आ गई है कि आज तलक बालकों को उद्योगों की शिक्षा प्रदान न करने का ही यह परिणाम है कि यह दुनिया नरक के समान बन गई है। उद्योगों की शिक्षा के बिना अब एक दिन भी नहीं चल पाएंगे हम, ऐसी गुहार संपूर्ण शिक्षित जगत में मच उठी है। अब शिक्षाशास्त्रियों में भी दो मत नहीं रह गए कि जब तक हाथ-पैर और आंखों को अच्छी शिक्षा नहीं मिलेगी तब तक दिमाग की शिक्षा अधूरी व त्रुटिपूर्ण रहेगी। जो कुछ करने को रहा है, वह बस काम करने को बचा है। शिक्षाविदों को पुराने विचारों से लड़ना है; सिर्फ बुद्धि को प्रतिष्ठा देने के विचार को समाप्त करना है; बुद्धि की शिक्षा के साथ हाथ-पैर की शिक्षा को समान दर्जा दिलाने के लिए आगे आना है; उन्हें लोकमानस में इस विचार को स्थिर करना है कि जो व्यक्ति लूला है और जिसे कोई काम-काज करना नहीं आता, उन दोनों में कोई फर्क नहीं है; अपने हाथों पानी का लोटा न लेने वाला और लूला, दोनों एक समान हैं; इसी तरह अपने बूटों के कस्से न बांधने-वाले और अपंग में कोई अंतर नहीं; इस भावना को फैलाने की आवश्यकता है।

—गिजुभाई

मुंबई में हुआ मर्यादा महोत्सव : कालजयी महर्षि अभिवंदना समारोह

बड़ी ज्योति है मर्यादा

देश की औद्योगिक राजधानी जैसी विशिष्टता वाला मुंबई शहर सदा ही अनेक प्रकार की गतिविधियों का केंद्र रहता है। इसी शहर में इस साल फरवरी का महीना तेरापंथ धर्मसंघ के लिए विशेष महत्त्व के रूप में सदा याद किया जाता रहेगा। इस बार का मर्यादा महोत्सव (139वां मर्यादा महोत्सव—6, 7, 8 फरवरी, 2003) मुंबई शहर के कांदीवली परिक्षेत्र में संपन्न हुआ। मर्यादा महोत्सव का मुख्य कार्यक्रम माघ शुक्ला सप्तमी (8 फरवरी, 2003) को सदैव की तरह श्रद्धापूर्ण उत्साह और आस्थामय उमंग के साथ संपन्न हुआ। इस त्रिदिवसीय आयोजन के साथ आचार्यश्री महाप्रज्ञ पदाभिषेक समारोह (माघ शुक्ला सप्तमी, इस बार 7 फरवरी, 2003) के जुड़ जाने से इस आयोजन की महत्ता भी द्विगुणित हो गई है।

तेरापंथ के इतिहास में मुंबई का मर्यादा महोत्सव इसलिए भी स्वर्णांकित हो गया है कि ठीक एक सप्ताह बाद माघ पूर्णिमा (16 फरवरी, 2003) को एक अनूठा पृष्ठ और जुड़ गया। तेरापंथ की आचार्य परंपरा में यह दिन विशेष महत्त्व का दिवस माना गया, जब आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने 82 वर्ष 7 मास और 18वें दिन में इस रोज प्रवेश कर तेरापंथ की आचार्य परंपरा में अब तक सर्वाधिक आयुष्यमान प्राप्त कर नए इतिहास का सृजन किया और मुंबई शहर इसका साक्षी बना। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का दीक्षा दिवस (माघ शुक्ला दसमी, इस बार 12 फरवरी, 2003) भी उत्साह व श्रद्धापूर्वक मनाया गया। इस प्रकार पूरा फरवरी का महीना मुंबई शहर के लिए आध्यात्मिक गतिविधियों से भरा-पूरा रहा। किसी भी क्षेत्र के लिए यह एक विरल अवसर माना जाएगा, जब एक साथ इतने महत्त्वपूर्ण आयोजनों का कोई क्षेत्र जीवंत साक्षी बन जाए।

मर्यादा पत्र प्रतिष्ठापना

वसंत पंचमी के मंगल दिवस पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने तेरापंथ धर्मसंघ के मर्यादा पत्र की प्रतिष्ठापना की और इसके साथ ही 139वें मर्यादा महोत्सव का शुभारंभ हो गया। मुनि श्री दिनेशकुमारजी ने मर्यादा गीत का संगान किया। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने इस वर्ष के सेवा केंद्रों के लिए साधु-साध्वियों के सिंघाड़ों की घोषणा की। शासन गौरव मुनिश्री ताराचंदजी और साध्वीश्री कनकश्रीजी ने संत-साध्वी समुदाय की ओर से इसके लिए प्रार्थना की।

मुनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूं) और साध्वी सरोज कुमारीजी ने अवसर विशेष पर अपने विचार प्रकट किए। इस अवसर पर लंबी यात्राएं कर आचार्यवर के सांनिध्य में पहुंचने वाली साध्वी कनकरेखाजी, निर्वाणश्रीजी आदि ने अपने यात्रा संस्मरण सुनाए और आचार्यवर को इस अवधि में निर्मित वस्तुएं भेंट कीं।

तेरापंथ कन्या मंडल, मुंबई की ओर से गीत प्रस्तुत किया गया। प्रवास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष श्री भीखमचन्द नाहटा व स्वागताध्यक्ष श्री रमेश धाकड़ ने अपने विचार प्रस्तुत किए।

श्री बैद को समाजभूषण अलंकरण

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्रकुमार चौरड़िया ने इस अवसर पर संघ के सर्वोच्च सम्मान 'समाज भूषण' के लिए श्री चंदनमल बैद के नाम की घोषणा की। श्री बैद को संघ की ओर से यह सम्मान अर्पित किया गया। श्री कन्हैयालाल फूलफगर ने बैदजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डाला। मुंबई प्रवास व्यवस्था समिति के मंत्री श्री चिमन सिंघवी ने बैदजी को साहित्य व उत्तरीय (शॉल) भेंट किया। वयोवृद्ध श्री चन्दनमल बैद ने भी अपने उद्‌गार व्यक्त किए।

राजस्थान सरकार में मंत्री श्री भंवरलाल मेघवाल भी इस अवसर पर उपस्थित थे।

संबोधन अलंकरण समारोह

मर्यादा महोत्सव का यह प्रथम दिवस श्री जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के लिए विशेष महत्त्व का दिन होता है। समय-समय पर आचार्य प्रवर की ओर से प्रदत्त संबोधन अलंकरण इस दिन संबंद्ध जनों को अर्पित किए जाते हैं। इस रोज इस कार्यक्रम का संचालन श्री भंवरलाल सिंघी ने किया। महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्र चौरड़िया ने अलंकरण पट्टिकाएं उपस्थित सम्मानित जनों को भेंट कीं। महासभा के महामंत्री श्री तरुण सेठिया ने सभी के प्रति आभार प्रकट किया। इस अवसर पर आचार्यवर को अनेक प्रकार की भेंटें अर्पित की गईं।

अनुशासन, मर्यादा और संयम जरूरी

मर्यादा-महोत्सव के प्रथम दिन आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने अपने उद्‌बोधन में अनुशासन, मर्यादा और संयम की आवश्यकता बतलाते हुए इस अवसर को अपने कार्यकलापों के आकलन और लेखा-जोखा का अवसर बताया।

पदाभिषेक समारोह

तेरापंथ के दसम् आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का नौवां पदाभिषेक समारोह 7 फरवरी को श्रद्धापूर्वक मनाया गया। इस रोज सूर्योदय के साथ ही पूरा माहौल समारोहपूर्ण नजर आ रहा था। साधु-साध्वियों के मंगलगीत के साथ समूचा दृश्य रोमांचकारी हो रहा था। अवसर-विशेष पर साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने आचार्यवर और युवाचार्यश्री को रजोहरण व प्रमार्जनी भेंट कीं।

अहिंसा समवसरण में मुख्य कार्यक्रम समणीवृंद के मंगलगीत से शुरू हुआ। महिला मण्डल और संकल्प अभियान में संभागी युवकों व किशोरियों ने समवेत स्वरों में गीत प्रस्तुत किए। बाल मुनि मुदितकुमारजी, मुनि अनंतकुमारजी, मुनि जितेंद्रकुमारजी, मुनि जयंतकुमारजी ने आचार्यवर के प्रति काव्य स्वरों में श्रद्धा अर्पित की। मुनि सुखलालजी, मुनि महावीरकुमारजी, मुनि विजयकुमारजी व समण स्थितप्रज्ञजी ने भी अपनी भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत की।

प्रवास व्यवस्था समिति की ओर से श्री मनोहर गोखरू व तेरापंथी सभा मुंबई के अध्यक्ष श्री ख्यालीलाल तातेड़ ने भी स्वागत के रूप में अपने विचार प्रकट किए।

अपूर्व दिन : माघ पूर्णिमा

मुनिश्री धनंजयकुमारजी ने रहस्यमय रूप में बताया कि माघ पूर्णिमा (16 फरवरी, 2003) का दिन एक अपूर्व दिवस के रूप में उदित होगा—यह बताते हुए उपस्थित जनमेदिनी को उन्होंने रोमांचित कर डाला और कहा कि इस रोज आचार्यश्री महाप्रज्ञजी तेरापंथ की आचार्य परंपरा के सर्वाधिक आयुष्यमान वाले आचार्य होंगे।

इस घोषणा से विशाल 'अहिंसा समवसरण' में उपस्थित जनमेदिनी अपूर्व श्रद्धा और उल्लास से सराबोर हो गई। धनंजय मुनि ने कहा कि हम युवाचार्यश्री के नेतृत्व में इस अवसर को विशेष आयोजन के रूप में अविस्मरणीय बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस अवसर पर उन्होंने अपनी काव्यरचना भी प्रस्तुत की।

साध्वी मुदितयशाजी, साध्वी चंद्रलेखाजी, साध्वी अनुप्रेक्षाश्रीजी, साध्वी प्रभावनाश्रीजी, साध्वी शुभ्रयशाजी, साध्वी कनकश्रीजी ने भी अपनी-अपनी तरह से भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत कीं। समणी प्रतिभाप्रज्ञाजी ने अपनी जन्म भूमि टमकोर की ओर से वर्धापना की। ध्यान रहे आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की जन्मभूमि भी टमकोर ही है। मुमुक्षु बहिनों और समणीवृंद की ओर से प्रभावी गीत प्रस्तुत हुए।

साध्वी विश्रुतविभाजी ने इस अवसर पर उस पत्र का वाचन किया जो चाड़वास मर्यादा महोत्सव के अवसर पर गुरुदेवश्री तुलसी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी को लिखा था। श्री जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेंद्रकुमार चौरड़िया ने यह पत्र एक सुंदर चित्रांकन में गुंफित कर आचार्यवर को अर्पित किया। श्री कन्हैयालाल छाजेड़, श्री अर्जुन बाफना, श्री मनीष भंसाली, श्री सुमतिचन्द गोठी, श्रीमती निर्मला बैद आदि ने भी अपने विचार प्रकट किए। भारत जैन महामंडल के अध्यक्ष श्री पन्नालाल सुराणा ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए। इस अवसर-विशेष पर साधु-साध्वीवृंद ने सुमधुर गीत प्रस्तुत किए।

इस अवसर पर साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की विलक्षण गुरु-निष्ठा की ओर इंगित करते हुए उनकी कार्यशैली और कर्तव्य-निष्ठा को भी अनुकरणीय बताया।

साध्वीप्रमुखाजी ने इस अवसर पर गुरुदेवश्री तुलसी की ओर से समय-समय पर दिए गए प्रवचनों और आलेखों के संकलन की एक कृति 'समस्या का सागर : अहिंसा की नौका' आचार्यवर को अर्पित की।

युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने आचार्य भिक्षु द्वारा स्थापित व्यवस्थाओं को महत्त्वपूर्ण बताते हुए तेरापंथ के आचार्यों के दायित्वों पर प्रकाश डाला और कहा कि हम आचार्य के जीवन से प्रशासन की कला सीख सकते हैं। युवाचार्यश्री ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के प्रशासन को दो कालखंडों में (एक गुरुदेवश्री तुलसी के विद्यमान रहते और दूसरा उनके महाप्रयाण के बाद) विभाजित करते हुए जिज्ञासा प्रकट की कि दोनों कालखंडों में उनके क्या अनुभव रहे?

युवाचार्यश्री ने खड़े होकर विनम्र प्रार्थना की कि 16 फरवरी को विशेष वर्धापना दिवस के रूप में मनाने की दृष्टि प्रदान करें।

युवाचार्यश्री की इस प्रार्थना के पीछे चतुर्विध संघ की प्रबल भावना और सहमति भी परिलक्षित हो रही थी।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के लिए इस विनम्र प्रार्थना को ठुकराना कठिनतर था, उन्होंने अपनी अनुमति का संकेत दिया तो विशाल जनमेदिनी हर्षित हो उठी और 'ओम् अर्हम' के समवेत नाद से अपना उल्लास प्रकट किया।

इस अवसर पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने दस वर्ष की अवस्था में उनके दीक्षित होने से लेकर पिछले पांच दशक से संघीय दायित्वों से जुड़े होने की कुछ बातों पर रोशनी डाली और कहा कि गुरुदेवश्री तुलसी के साथ काम करते हुए जो अनुभव प्राप्त किए, वे मेरे जीवन की महान् धरोहर हैं। उन्होंने प्रफुल्ल भाव से कहा कि आज महाश्रमण ने मेरे बहुत-से कामों को हल्का बना दिया है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी की ओर से संपादित ग्रंथों का उल्लेख भी किया और उनकी सूझबूझ और कुशलता को श्लाघनीय बताया।

मर्यादा महोत्सव : मुख्य कार्यक्रम

तेरापंथ के 139वें मर्यादा महोत्सव का प्रमुख कार्यक्रम 8 फरवरी को संपन्न हुआ।

कांदीवली के विशाल 'अहिंसा समवसरण' में जनमेदिनी उमड़ पड़ी थी। लग रहा था कि समूचा भारत इस समवसरण में प्रतिनिधि रूप में समाया पड़ा है। महामंत्रोच्चार और समणीवृंद द्वारा मंगल अष्टकम् व महिला मंडल, मुंबई के मंगलगीत से मर्यादा महोत्सव का मुख्य कार्यक्रम शुरू हुआ।

मुनि उदितकुमारजी, मुनि प्रसन्नकुमारजी, मुनि आलोककुमारजी, साध्वी पुण्ययशाजी, समणी निर्वाणप्रज्ञाजी, समणी निर्मलप्रज्ञाजी आदि ने अपने विचार प्रस्तुत किए। मुनि रजनीशकुमारजी और मुनि परमानंदजी ने कविताएं प्रस्तुत कीं। अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद के अध्यक्ष श्री पन्नालाल पुगलिया, तेरापंथी महासभा के महामंत्री श्री तरुण सेठिया सहित श्री कन्हैयालाल फूलफगर, श्री एस. रघुनाथन् ने भी अपने विचार प्रकट किए। श्री सुखराज सेठिया ने 'अमृतवाणी' के बारे में जानकारी दी। श्री जेसराज सेखाणी ने आचार्यवर के प्रवचनों की सी. डी. अर्पित की। डॉ. किरण नाहटा ने जयाचार्यजी द्वारा रचित 'उपदेशरत्न कथा कोश' का दूसरा खंड, श्री पदमचंद पटावरी ने 'युवादृष्टि' व 'तेरापंथ टाइम्स' का नया अंक और श्री कन्हैयालाल फूलफगर ने 'अणुव्रत' का नया अंक भेंट किया। साधुवृंद ने समवेत स्वरों में गीत प्रस्तुत किया, वहीं मुमुक्षु बहिनों ने अपने गीत की प्रस्तुति के साथ एक कलाकृति भी भेंट की। समणीवृंद ने भी गीत प्रस्तुत किया। श्रीमती ललिता जोगड़ ने हाथ से बनाया कलात्मक अभिनंदन पत्र भेंट किया।

इस अवसर पर मुनिश्री महेंद्रकुमारजी ने वैज्ञानिक संदर्भों के साथ मर्यादा के महत्त्व पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर उपस्थित केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री श्री मुरलीमनोहर जोशी ने कहा कि समूचा ब्रह्मांड मर्यादा पर अवलंबित है और जब मर्यादा का अतिक्रमण होता है तब-तब हिंसा, तनाव और शोषण सिर उठाता है। उन्होंने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी से अनुरोध किया कि वे हमें मर्यादा की दिशा में प्रेरित करते रहें।

मर्यादा है बड़ी ज्योति

इस अवसर पर अपने विशेष उद्‌बोधन में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने कहा कि आंख और सूर्य से भी बड़ी ज्योति है—मर्यादा। मर्यादाओं के फलित को पांच रूपों में प्रस्तुत करते हुए यह अपेक्षा की कि इनका सभी जगह ध्यान रखा जाना चाहिए। ये पांच फलित हैं—व्यवहार में परिवर्तन , संबंधों में सुधार, परस्पर सौहार्द, व्यवस्था-कौशल और योग्यता का विकास।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने कहा—मर्यादा पर आचार्य भिक्षु ने जो ध्यान केंद्रित किया और हमारे चौथे आचार्य ने मर्यादाओं को महोत्सव का जो रूप प्रदान किया—वह सबके लिए अनुकरणीय है।

इस अवसर पर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मूल मर्यादा पत्र का वाचन किया और सभी साधु साध्वियों ने करबद्ध खड़े होकर लेखपत्र का सस्वर पाठ किया।

इस अवसर पर कई चार्तुमासों की घोषणाएं भी हुईं।

मर्यादा महोत्सव के इन तीनों दिनों के कार्यक्रमों का संयोजन मुनि मोहजीतकुमारजी ने किया।

कालजयी महर्षि अभिवंदना समारोह

16 फरवरी का दिन तेरापंथ की आचार्य परंपरा में स्वर्णांकित हो गया। इस दिन आचार्यश्री महाप्रज्ञजी तेरापंथ की आचार्य परंपरा के सर्वाधिक आयुष्मान् आचार्य हो गए। अपनी विलक्षण प्रतिभा के साथ संपूर्ण प्राणी जगत को जो दिशाबोध आचार्यवर देते आ रहे हैं—चतुर्विध संघ ने इस रोज अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट की और इस तरह इतिहास-विरल प्रसंग पर 'कालजयी महर्षि अभिवंदना समारोह' का आयोजन संपन्न हुआ। इस आयोजन को अनेक दृष्टियों से विलक्षण और अद्वितीय माना गया। यह समारोह अनायास ही दो दिन का हो गया। 16 फरवरी को

चतुर्विध संघ ने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के दीर्घायुष्य की मंगल कामना की। यह कामना भी की कि उनका अमोघ आशीर्वाद सदैव मिलता रहे।

17 फरवरी को आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने लगभग 45 मिनट तक मर्मस्पर्शी वक्तव्य प्रस्तुत किया **(देखें इसी अंक में–पृष्ठ 19)**। 17 फरवरी को ही अनेक साधु-साध्वीगण ने अपने उद्‌गार प्रकट किए। युवाचार्यश्री महाश्रमणजी ने कामना की कि दीर्घकाल तक आप हमें साधना के रहस्य प्रदान करते रहें।

16 फरवरी को अभिवंदना समारोह भी अत्यंत आकर्षक और श्रद्धासिक्त रहा। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा रचित 83 ग्रंथों के नए संस्करण स्वयं आचार्यप्रवर को अर्पित किए गए। आचार्यश्री की हस्तलिपि में मुद्रित लघु ग्रंथ 'प्रतिदिन' महासभा के अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र चौरड़िया ने आचार्यप्रवर के कर कमलों में अर्पित किया। 'जैन भारती' का फरवरी अंक, जो अवसर-विशेष से युक्त सामग्री के साथ प्रकाशित हुआ, आचार्यवर को अर्पित किया गया।

इस अभिवंदना समारोह से दो दिन पूर्व ही भारत के राष्ट्रपति महामहिम ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने आचार्यवर से भेंट की। दोनों के मध्य लंबी और महत्त्वपूर्ण बातचीत हुई **(देखें इसी अंक में–पृष्ठ 21)**। ❖

प्रस्तुतकर्ता : भवानी सोलंकी

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें, हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कर्तृत्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

सम-सामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों, तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-
कविता भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति
रचनाकार पहले से ही अपने पास रखें

हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

बस्तीमलजी छाजेड़

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

शाह मांगीलाल शांतिलाल छाजेड़ एंड कंपनी

64, ए.एम. लेन, चिकपेट, बंगलौर 560053

जैन भारती, अप्रैल, 2003 ■ भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पं. सं. : आर जे/डब्ल्यू आर /11/48/03-05

We owe it to you Customers !

It is easy to be No. 1, but difficult to remain there. But, we have been doing it for the past 5 years with our dedicated services and thanks to the invaluable support & trust in us by our valued customers. With promptness in-built, we have been serving the Indian Industries tirelessly against their requirements of **Bearings, Grease, Seals, Blocks, Sleeves & accessories** and **a variety of Maintenance Products** and **Condition Monitoring systems of SKF.** The New Millennium is on; an era that will bring forth a fresh batch of discoveries, newer wonders in technology, a greater fillip to standards of life as a whole. Rest assured, Premier (India) Bearings Limited will remain very much a participant to this absorbing, all-engaging process and will be there with you to meet your requirements.

SKF

Bearing is not our only business.

CR

Premier (India) Bearings Limited

(India's No. 1 SKF Industrial Distributors)

25 Strand Road, 4th Floor, Kolkata 700001, Ph-2220-1926 / 0640, Fax - 22485745, Email-pibl@vsnl.com

Branches at - Mumbai, Chennai, Bangalore, New Delhi, Chandigarh & Haldia

भँवरलाल सिंघी, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं सांखला प्रिण्टर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।